❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

श्रीमद्भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ५ | गौराब्द ४७३, मास—हृषिकेश ३०, वार—कारणोदशायी बृहस्पतिवार, ३१ भाद्रपद, सम्वत् २०१६, १७ सितम्बर | संख्या ४

श्रीश्रीराधाष्टमी-व्रतम्

इत्युक्तो भगवान् साक्षात् श्रीकृष्णो गोकुलेश्वरः ।
प्रत्याह प्रणतान् देवान्मेघगंभीरया गिरा ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

हे सुरज्येष्ठ हे शम्भो देवाः शृणुत मद्वचः ।
यादवेषु च जन्यध्वमंशैः स्त्रीभिर्ममाज्ञया ॥२४॥
अहं चावतरिष्यामि हरिष्यामि भुवो भरम् ।
करिष्यामि च वः कार्यं भविष्यामि यदोः कुले ॥२५॥

इत्युक्तवन्तं जगदीश्वरं हरिं, राधा पतिप्राण-वियोग-विह्वला ।
दावाग्निना दुःखलतेव मूर्च्छिताश्रु-कम्प-रोमांचित-भावसंकुला ॥२८॥

श्रीराधोवाच

भुवो भरं हर्त्तुमलं व्रजेभुवं, कृतं परं मे शपथं शृणोत्वतः ।
गते त्वयि प्राणपते च विग्रहं, कदाचिदत्रैव न धारयाम्यहम् ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच—

त्वया सह गमिष्यामि मा शोकं कुरु राधिके ।
हरिष्यामि भुवोः भारं करिष्यामि वचस्तव ॥३१॥

श्रीराधिकोवाच—

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी ।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनःसुखम् ॥३२॥

वेदनागक्रोशभुमिं स्वधाम्नः श्रीहरिः स्वयम् ।
गोवर्द्धनञ्च यमुनां प्रेषयामास भूपरि ॥३३॥

—श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे तृतीयोऽध्याये

श्रीराधाया पूर्णतमस्तु साक्षाद्भूत्वा व्रजे किं चरितं चकार ।
तद्ब्रूहि मे देवऋषे ऋषीश, त्रिताप-दुःखात् परिपाहि मांस्वम् ॥३॥

श्रीनारद उवाच—

अथ प्रभोस्तस्य पवित्रलीलां, सुमङ्गलां संशृणुतात् परस्य ।
अभूत् सतां यो भुवि रक्षणार्थं, न केवलं कंसवधाय कृष्णः ॥५॥

अथैव राधा वृषभानुपत्न्यामावेश्य रूपं महसः पराख्यम् ।
कलिन्दजा-कूल-निकुञ्जदेशे, सुमंदिरे सावतार राजन् ॥६॥

घनावृते व्योम्नि दिनस्य मध्ये, भाद्रे सिते नागतिथौ च सोमे ।
अवाकिरन् देवगणाः स्फुरद्भिस्तन्मन्दिरे नन्दनजैः प्रसूनैः ॥

राधावतारेण तदा बुभूवुर्नद्योऽमलाभाश्च दिशः प्रसेदुः ।
ववुश्च वाता अरविन्दरागैः, सुशीतलाः सुन्दरमन्दयानैः ॥७-८॥

सुतां शरच्चन्द्रशताभिरामां, दृष्ट्वाथ कीर्तिर्मुदमाप गोपी ।
शुभं विधायाशु दधौ द्विजेभ्यो, द्विलक्षमानन्दकरं गवाञ्च ॥९॥

प्रेङ्खे खचिद्रत्नमयुखपूर्णे, सुवर्णयुक्ते कृतचन्दनाङ्के ।
आन्दोलिता सा ववृधे सखीजनैर्दिने दिने चन्द्रकलेव ताभिः ॥

यद्दर्शनं देववरैः सुदुर्लभं यज्ञैरवाप्तं जनजन्मकोटिभिः ।
सविग्रहां तां वृषभानुमंदिरे लक्षयन्ति लोकाललनाप्रलालनैः ॥१०-११

श्रीरासरङ्गस्य विकाशचन्द्रिका दीपावलीभिर्वृषभानु-मंदिरे ।
गोलोकचूडामणि कण्ठभूषणां राधां परां तां सततं स्मरामि ॥१२॥

—श्रीमद्गर्गसंहितायां गोलोकखण्डे अष्टमोऽध्याये

फलश्रुतिः—

श्रीराधिका-जन्म-वृत्तान्तं नित्यं य पठेन्नरः ।
राधामाधवयोः पादे भक्तिं दास्यं लभेद्ध्रुवम् ॥
कर्म निर्मूलनं कृत्वा मृत्युं सुदुर्जयम् ।
विलङ्घ्य सर्वलोकांश्च याति गोलोकमुत्तमम् ॥

अनुवाद—

गोकुलेश्वर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण देवताओं द्वारा इस प्रकार वंदित होनेपर मेघके समान गंभीर वाणीसे कहने लगे ॥२३॥

भगवान्‌ने कहा—'हे चतुरानन ! हे शंकर ! हे देवगण ! तुम लोग मेरी बात सुनो,—मेरी आज्ञासे तुम लोग अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ अपने-अपने अंशसे यदुवंशमें जन्म लो । मैं भी यदुकुलमें अवतीर्ण होऊँगा और पृथ्वीका भार उतार कर तुम लोगोंका कार्य सम्पादन करूँगा ॥२४-२५॥

अपने पति श्रीहरिके ऐसा कहने पर श्रीमती राधिका अपने प्राणोंके समान प्रिय पतिके वियोग-भावनासे अत्यन्त विह्वल होकर दावाग्नि द्वारा झुलसी हुई लताकी तरह मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं; उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये, शरीर काँपने लगा तथा रोंगटे खड़े हो गये ॥२८॥

श्रीमती राधिकाने कहा—'प्राणनाथ ! आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये पृथ्वीलोकमें जायेंगे । अतएव आप मेरी एक अमोघ-प्रतिज्ञा श्रवण कीजिए; आपके भूलोकमें जाने पर मैं अकेली किसी प्रकार भी यहाँ अपने शरीरको धारण नहीं कर सकूँगी ॥२९॥

भगवान् कृष्ण बोले—'राधिके ! चिन्ता न करो, मैं तुम्हारे वचनका पालन करूँगा—तुम्हें भी साथ ले चल कर पृथ्वीका भार उतारूँगा ॥३१॥

श्रीमती राधिकाने कहा—'जहाँ वृन्दावन नहीं, जहाँ यमुना नदी नहीं और जहाँ गिरिराज गोवर्द्धन नहीं, वहाँ मुझे शान्ति नहीं मिलेगी ॥३२॥

श्रीमती राधिकाजीकी बात सुनकर स्वयं भगवान् हरिने अपने गोलोक धामसे चौरासी कोस भूमि, गोवर्द्धन पर्वत और यमुनाको पृथ्वीपर भेज दिया ॥३३॥

—श्रीगर्ग संहिता, गोलोक खण्डे तृतीयोऽध्याये

(बहुलाश्वने कहा—) हे देवर्षि नारद ! परिपूर्णतम स्वयं श्रीकृष्णने राधाके साथ व्रजपुरमें अवतीर्ण होकर कौन-सी लीला की थी, उसे सुना कर आप आधिदैविकादि त्रितापोंसे मेरी रक्षा कीजिए ॥३॥

नारदजी बोले—'अनन्तर परम प्रभु श्रीकृष्णकी मङ्गलमयी पवित्र-लीलाका श्रवण करो; वे केवल कंसका वध करनेके लिये ही पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे, ऐसी बात नहीं; वे संतजनोंकी रक्षाके लिये भी व्रजमें अवतीर्ण हुए थे ॥५॥

हे राजन् ! श्रीकृष्णने वृषभानुकी पत्निमें अपने परम तेजका श्रीराधाके रूपमें संचार किया, उसी तेजसे यमुना तट पर निकुंज-प्रदेशमें उत्तम भवनमें श्रीमती राधिकाजी आविर्भूत हुईं ॥६॥

भाद्रपदकी शुक्लाष्टमी तिथिको सोमवारके दिन दो पहरके समय वे अवतीर्ण हुईं । उस समय आकाशमें बादल घिर रहे थे । उस समय देवताओंने उस भवनके ऊपर नन्दनवनमें उत्पन्न खिले हुए पुष्पोंकी वर्षा की; नदियाँ निर्मल हो गयीं, दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं, सुशीतल वायु पद्मपरागको साथ लेकर मन्द-मन्द प्रवाहित होने लगी ॥७-८॥

शरत्कालीन सैकड़ों शशधरोंकी कान्तिको मात करती हुई परमासुन्दरी कन्याका दर्शन कर माता कीर्तिका देवी बड़ी प्रसन्न हुईं । उन्होंने शीघ्र ही मङ्गलाचार कर ब्राह्मणोंको दो लाख अतिशय आनन्ददायक गौवें दान की ॥९॥

पश्चात् राधा, किरणमालाओंसे पूर्ण रत्नमण्डित चन्दन-चर्चित सोनेके पालनेमें सखियों द्वारा झुलायी जाती हुई दिन दिन चन्द्रकलाकी भाँति बढ़ने लगी। जिनका दर्शन देवताओंको भी अतिशय दुर्लभ है, जो करोड़ों जन्मोंके यज्ञादि अनुष्ठानों द्वारा भी प्राप्त नहीं होतीं, आज उनको लोग वृषभानु महाराजके मन्दिरमें शरीर धारिणी और ललनाओं द्वारा लालित-पलित होते देख रहे हैं ॥१०-११॥

श्रीरास-रङ्गको प्रकाशित करने वाली दीपावली-रूप जो ज्योत्सना आज वृषभानुके मन्दिरमें उदित हुई है, गोकुल चूड़ामणि श्रीकृष्णके कंठहार स्वरूपा उन श्रीमती राधिकाका मैं सर्वदा स्मरण करता हूँ ॥१२॥

जो श्रीराधिकाके जन्म-वृत्तान्तका नित्य पाठ करते हैं, उनको श्रीराधामाधवके चरण-युगलोंमें भक्ति और दास्य लाभ होगा; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं तथा वे कर्मकाण्डको जड़से उखाड़ फेंक कर दुर्जय मृत्युको जय कर समस्त लोकोंको पार कर सर्वोत्तम गोलोक धाममें गमन करेंगे।

—श्रीगर्ग संहिता, गोलोक खण्डे अष्टमोऽध्याये

सन्त (सज्जन) के लक्षण

स्थिर—१५

शरीर और मनके धर्म परिणामशील हैं, अतएव अनित्य हैं

आत्माका धर्म अचंचल है। मन और शरीरका धर्म चंचल—परिणामशील होता है। अनित्य और परिणामशील वस्तु किसी भी दशामें स्थिर नहीं हो सकती हैं। परिवर्त्तनशील वस्तुके ऊपर विश्वास नहीं किया जा सकता है। शरीर नित्य नहीं है। मन भी अनित्य वस्तुओंसे अपनी अनुशीलनीय वृति संग्रह करता है। अतएव ये दोनों ही अस्थिर हैं।

सज्जन स्थिर-वस्तु—भगवानके उपासक होने के कारण स्थिर प्रकृतिके होते है

तात्कालिक वृत्तिकी प्रेरणासे शरीर और मन नानाप्रकारके प्रारम्भोंमें प्रवृत्त होते हैं। परन्तु चांचल्य-रहित होनेपर नित्यधर्मकी स्थिरताका अनुभव आत्मा द्वारा किया जाता है। भगवद्भक्त परिणामशील असत् वस्तुके प्रति प्रवृत नहीं होते। जबतक जीवकी चित्तवृत्ति भगवान्की सेवामें नियुक्त नहीं होती, तब तक अस्थिर धर्म जीवको छोड़ते नहीं। जिस समय तक जीवकी मनोवृत्ति असत् वस्तुओंके प्रति दौड़ती रहती है, उस समय तक वह स्थिर कैसे हो सकता है। भगवान्की उपासना करनेवाले सज्जन सर्वदा स्थिर रहते हैं। भगवान् स्थिर वस्तु हैं और सज्जन अर्थात् भगवद्भक्तजन स्थिर प्रकृतिसम्पन्न होते हैं।

शम-दमादि-योगाभ्यास भगवान्के उद्देश्यसे अनुष्ठित न होने पर उनसे प्रकृत स्थिरता या चित्तवृतिका निरोध सम्भव नहीं

पतञ्जलि ऋषिके योगदर्शनकी आलोचना करके कोई ऐसा कह सकते हैं कि कृत्रिम उपायसे चित्त-वृत्तिका निरोध हो सकता है। इसके अतिरिक्त ईश्वर प्रणिधान द्वारा भी चित्त स्थिर किया जा सकता है। शम-दमके अभ्याससे जिस स्थिरताका उद्देश्य किया जाता है, वह परिणामशील और अस्थिरताकी पूर्व-वृति है। नित्य वस्तु भगवान्के साथ सम्बन्ध-स्थापनके बिना वास्तविक स्थिरता कदापि संभव नहीं है।

साध्य-साधन या उपेय-उपायमेंभेद-बुद्धि नित्यत्वका विरोधी है

अन्याभिलाषी, कर्मी, ज्ञानी या योगी ये कोई भी स्थिर नहीं हैं। वे अपने-अपने अभावोंकी कल्पना कर अस्थिरसे सुस्थिर होनेके लिये विभिन्न काल्पनिक अनित्य अस्थिरताके लिये प्रयत्न करते हैं। अपनेको अभावग्रस्त दुःखी मानकर अपनी कामनाकी पूर्तिके लिये संसारमें इतस्ततः भटकते फिरते हैं। विशेषतः साधन और साध्यमें वैषम्य होने पर अस्थिरता ही अन्तिम फल होता है अर्थात् उपाय और उपेयका भेद नित्यत्वका विरोधी है।

सज्जनगण इष्टकी प्राप्तिमें धैर्यशील होते हैं अतएव वे धीर और स्थिर होते हैं

श्रीगौर सुन्दरने एक दिन श्रीरघुनाथदास गोस्वामीको कहा था—

स्थिर हइया घरे जाओ ना हओ बातुल।
क्रमे-क्रमे पाय लोक भवसिन्धु कूल॥

सभी कार्योंमें स्थिरताकी आवश्यकता होती है। धैर्यके अभावमें भक्तिका विकाश नहीं होता। अनात्म धर्मोंमें अनित्यता और अस्थिरता है। सज्जन व्यक्ति इनसे दूर रहते हैं। सज्जन सभी अनुष्ठानोंमें धीर होते हैं। सज्जनों पर ही एकमात्र विश्वास किया जा सकता है। उनकी दृढ़ता जगत्के लिये आदर्श है।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती

शिक्षाष्टक

परमतत्व एक और अद्वितीय है। वह तत्त्व सब समय और सभी अवस्थाओंमें स्वाभाविक अचिन्त्य-शक्तिसम्पन्न होता है। इस अचिन्त्य-शक्ति द्वारा वह तत्त्व सविशेष और निर्विशेष दो भावोंमें प्रतीत होता है। सविशेषता और निर्विशेषता दोनों युगपत् सिद्ध होने पर भी सविशेष-प्रतीति ही बलवती होती है। निर्विशेष प्रतीती उपलब्ध नहीं होती, केवल स्वीकार की जाती है।

सविशेष प्रतीतिमय परमतत्त्व अपनी अचिन्त्य-शक्तिके प्रभावसे सर्वदा चार रूपोंमें अवस्थित है—स्वरूप, तद्रूप वैभव, जीव और प्रधान। जिस प्रकार सूर्य-तत्त्वमें सूर्यमण्डलका भीतरी तेज, उनका मण्डल, मण्डलकी बाहरी तेज-रश्मि और तेजकी प्रतिच्छवि—ये चार तत्त्व विद्यमान हैं, उसी प्रकार परमतत्त्वके उपरोक्त चार रूप नित्यसिद्ध हैं। शक्तिमान-तत्त्व स्वरूपतः एक होने पर भी उनमें चार प्रकारके भेद हैं। अतएव भेद और अभेद युगपत् नित्य-सत्यात्मक हैं। परमतत्त्वकी अचिन्त्यशक्ति विचित्र-विक्रममयी हैं। उसके अनन्त प्रभावोंमें तीन को हम जान सकते हैं। इन तीन प्रभावोंके एक-एक प्रभावसे युक्त होकर तत्त्वकी पराशक्ति स्वभावतः अन्तरंगा या चिच्छक्ति, तटस्था या जीव शक्ति और बहिरंगा या माया शक्तिके रूपमें नित्य प्रकाशित है। पराशक्ति की अन्तरंगा शक्तिसे किरण-परमाणु स्थानीय अनन्त जीव-स्वरूप नित्यसिद्ध हैं। परतत्त्वकी छाया ही मायावैभव है, जो परतत्त्वकी पराशक्तिकी बहिरंगाशक्तिके प्रभावसे प्रतीत होता है। स्वरूप अनन्त होने पर भी तीन मुख्य हैं—ऐश्वर्य-स्वरूप, माधुर्य-स्वरूप और औदार्य-स्वरूप। ऐश्वर्य-स्वरूपको नारायण-स्वरूप, माधुर्यस्वरूपको कृष्ण-स्वरूप और औदार्य-स्वरूपको कृष्णचैतन्य-स्वरूप भी कहते हैं। इन तीनों स्वरूपोंके तीन धाम हैं। परव्योम—नारायणका धाम है। गोलोक वृन्दावन—कृष्णका धाम है और नवद्वीप—श्रीकृष्णचैतन्यका धाम है। इन तीनों

धामोंमें वहाँ के भगवत्स्वरूपोंके लीलोपकरणोंको स्वरूप-वैभव कहते हैं। जिस प्रकार सूर्यस्वरूपके बाहर असंख्य परमाणुओंकी स्थिति है, उसी प्रकार भगवत्स्वरूपके बाहर चित् परमाणुरूप असंख्य जीवों की स्थिति है। जीव स्वभावतः स्वरूप और बहिरंग —इन दोनों वैभवोंके बीचमें अवस्थित होते हैं। तटस्थ शक्ति द्वारा वे दोनों वैभवोंकी ओर जानेकी योग्यता रखते हैं। अनादि स्वरूप-विमुखताके कारण वे माया वैभवमें स्थित हैं तथा स्व-स्वरूप भ्रमके कारण जड़ीय अभिमानद्वारा जड़धर्मरूप कर्ममार्गमें भ्रमणशील हैं। अतएव वे सर्वदा सांसारिक दुःखों-का भोग करते हैं। अनन्त जड़ब्रह्माण्ड और बद्ध जीवोंके स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर—सब कुछ माया वैभव है।

ऐश्वर्य-प्रधान भगवत्स्वरूप वैकुण्ठके परव्योममें चतुर्भुजमूर्त्ति अर्थात् नारायणरूपमें अवस्थित होते हैं। वहाँ पर अनन्त नित्यसिद्धजीव दास्यभावसे उनकी सेवा करते हैं।

माधुर्य-प्रधान भगवत्स्वरूप द्विभुजमूर्त्तिमें वैकुण्ठ के अन्तःप्रकोष्ठमें नित्य दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रसकी अनन्त लीलाएँ विस्तार करते हैं। उस अन्तःपुरमें दो प्रकोष्ठ हैं; एकका नाम गोलोक प्रकोष्ठ है तथा दूसरेका वृन्दावन। गोलोकमें मधुर रस नित्य स्वकीय-भावात्मक होता है तथा वृन्दावनमें मधुर रस नित्य पारकीय-भावात्मक होता है।

औदार्य-प्रधान भगवत्स्वरूप द्विभुज होते हैं, कभी-कभी षड्भुज मूर्त्तिमें वैकुण्ठके नवद्वीप-प्रकोष्ठमें भक्त-भावात्मक औदार्य-रसद्वारा अपने रसयोग्य परिकरोंके साथ जीवोंके आचार्यके रूपमें नित्य विरा-जमान हैं।

१४०७ शकाब्दकी फाल्गुनी पूर्णिमाकी संध्याके पश्चात् औदार्य-प्रधान भगवान् श्रीचैतन्यदेव गौड़-प्रदेशमें गङ्गाके तट पर प्रपंचगत अपने धाम नवद्वीप-में श्रीजगन्नाथ मिश्रकी पत्नी श्रीशचीदेवीके गर्भसे अवतीर्ण हुए। बाल्यकालमें अपनी मधुर बाल-लीलाओं द्वारा, पौगण्डमें विद्याभ्यासकी लीलाओंसे, कैशोरावस्थामें विवाह-लीलाद्वारा, पश्चात् माध्व-सम्प्रदायके वैष्णव श्रीईश्वरपुरीके निकट दीक्षाग्रहण और कीर्त्तन-प्रचारद्वारा सारी गौरभूमिको आनन्द-सागरमें निमग्न कर दिया। चौबीस वर्षकी आयुमें केशव भारतीसे संन्यास लेकर छः वर्षोंतक भारतके उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी और पश्चीमी प्रदेशोंके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भ्रमण कर पवित्र हरिभक्तिका प्रचार और शुद्धहरिभक्तिके विरुद्ध मतवादोंका खण्डन किये। पश्चात् अट्ठारह वर्षोंतक अपने पार्षदोंके साथ श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथपुरी) में विराजमान रह कर वहाँसे श्रीरूप-श्रीसनातन आदि प्रचारकोंको भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें भेजकर अपने अचिन्त्यभेदाभेद-मतका प्रचार करवाया तथा स्वरचित शिक्षाष्टकका परम आस्वादन करते हुए जीवोंको उनके परम कर्त्तव्यके सम्बन्धमें शिक्षा दी। श्रीकृष्णदास कवि-राज गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्यलीला २० परिच्छेदमें लिखा है—

> पूर्वे अष्ट श्लोक करि शिक्षा दिल।
> सेइ अष्ट श्लोक आपने आस्वादिल॥
> प्रभुशिक्षा अष्ट श्लोक येई पढ़े सुने।
> कृष्ण-प्रेम भक्ति तार बाढ़े दिने दिने॥

श्रीमन्महाप्रभुजीने जिन आठ श्लोकोंका प्रचार किये हैं, उनके तात्पर्यकी व्याख्याकी जा रही है—जिन श्रीकृष्ण-संकीर्त्तनद्वारा जीवका चित्तरूपी दर्पण निर्मल हो जाता है, संसाररूप महादावाग्नि बुझ जाती है, परम कल्याणरूप कुमुदको विकशित कराने वाली भावरूपी चन्द्रिका वितरित होती है, जो विद्या-वधूके जीवन-स्वरूप आनन्द-समुद्रको बढ़ानेवाले हैं, पद-पदपर पूर्णामृतका आस्वादन कराते हैं एवं शुद्धजीवके सम्पूर्ण स्वरूपको स्निग्ध करानेवाले हैं, वे कृष्ण-नाम-रूप-गुण-लीला-संकीर्त्तन सर्वोपरि जययुक्त हों।

परम औदार्यविग्रह निखिल जीवोंके आचार्य श्रीमन्महाप्रभुजीने इस श्लोक द्वारा समस्त तत्त्वोंका

निर्देश कर जीवोंको आशीर्वाद दिया है पूर्वोक्त परम तत्त्वके अन्तर्भूत तटस्थ शक्तिसे प्रकटित जीवके सम्बन्ध-ज्ञानकी सिद्धिके लिये "चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि-निर्वापणम्" इस चरणकी उक्ति हुई है। जीव स्वभावतः तटस्थ होते हैं अर्थात् स्वरूपानन्दरूप वैकुण्ठ और विरूपानन्दरूप मायिक संसार दोनों अवस्थाओंके योग्य होते हैं। भगवत् विमुखताके कारण वे मायामें प्रवेश करते हैं। मायामें प्रवेश करने पर उनका विशुद्ध चिद् अभिमान रूप विशुद्ध अहङ्कार विकृत हो पड़ता है एवं जड़ अभिमान रूप विकार द्वारा ढक जाता है। कृष्णानुशीलन द्वारा चित्तका अविद्यामल दूर होने पर चित्त-दर्पणमें स्वरूप तत्त्वका विशुद्ध-दर्शन होता है। इसीका नाम स्वरूप-सिद्धि है। उस सिद्धिके गौण फलसे ही संसार-दुःख नष्ट हो जाता है।

भगवत्-स्वरूप, जीव-स्वरूप, माया-स्वरूप और मायाके अन्तर्गत भूत भविष्यतात्मक काल एवं कर्म-स्वरूप ज्ञानका नाम सम्बन्ध ज्ञान है। 'श्रेयःकैरव-चन्द्रिका वितरणम्' इस अर्द्धलीके द्वारा अभिधेय-तत्त्व रूप साधन-भक्तिका निर्देश पाया जाता है। कर्म-ज्ञान आदिसे जीवका नित्य मंगल साधित नहीं हो सकता है। केवल हरिभक्ति द्वारा ही नित्य-कल्याण साधित होता है। जब जीवके हृदयमें सत्सङ्ग द्वारा ऐसी श्रद्धा उत्पन्न होती है, तब वह साधुगुरुका पदाश्रय कर श्रवण, कीर्त्तन, विष्णु-स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—इस नवधा भक्तिका अवलम्बन कर श्रीकृष्णसंकीर्त्तन करने लगता है। इस कीर्त्तनसे पराविद्याकी परम ज्योति प्रकाशित होकर जीवका परम कल्याण साधन करती है। सत्सङ्गमें कृष्णानुशीलन करते-करते श्रद्धा परिपक्व होने पर निष्ठा, रुचि और आसक्ति आदि अवस्थाओंको पार कर भाव-दशामें बदल जाती है, उस समय शुद्ध अहङ्कारको ढकने वाली स्थूल-सूक्ष्म दोनों उपाधियाँ दूर हो जाती हैं तथा उस समय शुद्ध अहङ्कार अपने पूर्व सिद्ध चित्-स्वरूप और रसयोग्य चिद्देहको प्राप्त करता है। मधुर रसाविष्ट जीव अपने रसयोग्य गोपी देह प्राप्त कर माधुर्यमय वृन्दावन धाममें कृष्णलीलाका उपकरण हुआ करते हैं। यहाँ पर स्वरूप शक्तिकी विद्याके प्रभावसे जीवका गोपी-भाव प्राप्त होना ही विद्यावधूत्व प्राप्त होना है। तब जीव विद्यावधू होकर श्रीकृष्ण कीर्त्तनको जीवन-स्वरूपमें वरण करते हैं। भावदशा क्रमशः चिद्धामके विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी रूप चित् सामग्री द्वारा परिपुष्ट होकर चिदेकरसता प्राप्त करती है। उस समय जीवका आनन्दाम्बुधि स्वभावतः ही परिवर्द्धित होता है। चिद् रसकी नित्यताके कारण भूत-भविष्य रूप जड़ीयमलसे दूषित काल नहीं होता। सर्वदा वर्त्तमान काल होता है। अतएव अनुराग लब्ध जीवके लिये श्रीकृष्ण संकीर्त्तन पद-पद पर पूर्णामृतास्वादन स्वरूप होता है। उस समय गुण-गुणी भेदके अभावके कारण विशुद्ध चिन्मय-तत्त्वात्मक जीव विशुद्ध अहङ्कार, चित्त, मन, बुद्धि, देह और इन्द्रियोंसे युक्त अणुचैतन्य-स्वरूपमें अवस्थित होता है। ऐसी दशामें जो कृष्ण कीर्त्तन होता है वह सर्वात्मस्नपन-रूप अवस्था है अर्थात् स्वरूप साक्षात्कारके समय ब्रह्मलय और निज संभोगसुख इन दोनोंसे रहित केवल सच्चिदानन्द-युगल-सेवा ही जीवकी सिद्ध सत्ताका अभिन्न सहचर है। इसीको प्रयोजन, तत्त्व कहते हैं। इस प्रकारका सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजनका ज्ञान मार्जित अर्थात् निर्मल है। शुद्ध भक्ति स्वरूप श्रीकृष्ण संकीर्त्तन ही सर्वत्र प्रयोजन है। श्लोकके चतुर्थ पादमें 'परं' शब्द द्वारा भुक्ति और मुक्ति साधक धर्मज्ञानके अन्तर्गत हरि-कीर्तन अनादृत हुआ है।

श्रीकृष्णसंकीर्त्तन चार प्रकारका होता है—नाम-संकीर्तन, रूप संकीर्तन गुण-संकीर्त्तन और लीला संकीर्त्तन। परमार्थरूप वस्तुका नाम ही उसके अनुभव का मूलाधार है। नामके पूर्णरूपसे उदित होने पर रूपका उदय होता है। रूप पूर्णरूपसे उदित होने पर गुण उदित होते हैं, गुणोंके सम्पूर्ण रूपसे उदित होने

पर लीला उदित होती है । अतएव नाम ही सबका मूलाधार है तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंका एकमात्र कारण है। नाम ही क्रमशः रूप, गुण और लीलाके रूपमें परिणत होता है। अतएव नामको छोड़ कर बद्ध और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके लिये दूसरी कोई गति नहीं है। श्रीमन्महाप्रभुके सारे उपदेश नामको ही लक्ष्य करते हैं। वे कहते हैं—"हे भगवन्! आप जीवके प्रति अपार करुणा कर अनेक नाम प्रकाश किये हैं। कृष्ण, गोविन्द, अच्युत आदि मुख्य नामों में जिनका अधिकार नहीं है, उनके लिये परमात्मा, पाता, नियन्ता, ब्रह्म आदि अनेक नाम भी प्रकाश किये हैं, इनमेंसे मुख्यनामोंमें आपने सारी शक्ति और गौण नामोंमें अनेक प्रकारके पापोंका नाश करने वाली और भोग-मोक्ष प्रदान करनेवाली शक्ति अर्पण की है। जीवोंकी अयोग्यताके प्रति दृष्टि रखकर अपने नाम-ग्रहणमें देश-काल आदिका कोई नियम भी नहीं रखा है। एक तरफ आपकी तो ऐसी कृपा है, परन्तु दूसरी ओर अपने दुर्भाग्यकी बात क्या बतलाऊँ? तुम्हारे मधुरातिमधुर नाममें भी मेरी रुचि नहीं है।" नाममें सम्पूर्ण शक्ति तो है, परन्तु दस प्रकारके नामापराधोंके दूर हुए बिना जीवकी नाममें रुचि नहीं होती। साधुनिंदा, भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी विभूति शिव आदि देवताओंमें भेदबुद्धि, गुरुके प्रति अवज्ञा, वेद और वेदानुगत शास्त्रोंकी निंदा, हरिनाममें अर्थवाद, नामके बलपर असत् प्रवृति, दूसरे-दूसरे शुभ कर्मोंको हरिनामके समान मानना, हरिविमुख और अनाधिकारीको नामका उपदेश करना, नामकी महिमा सुनकर भी नाममें प्रीतिका अभाव होना—इन नामापराधोंको दूर कर नाम ग्रहण करनेसे नामका स्वरूप उदित होता है। अतएव जातश्रद्ध व्यक्ति श्रीगुरुदेवसे नाम-तत्त्व प्राप्त होकर निरपराध होकर नामका अनुशीलन करेंगे। नाम-ग्रहीताको कर्ममार्गके अन्तर्गत पापक्षय अथवा पुण्य-संचयके लिये प्रयत्न करना उचित नहीं है। क्योंकि श्रद्धाके उदित होनेके साथ ही कर्माधिकार दूर हो जाता है। भगवद्विषयिनी श्रद्धाके उदय होनेके समय ही माया-विषयिनी अश्रद्धा भी सहज ही उदित होती है। इसलिये पाप-पुण्यके प्रति रुचि अब नहीं स्थान पाती। श्रद्धालु पुरुष स्वभावतः जो कुछ करते हैं अथवा जो विरक्ति दिखलाते हैं, वह सब कुछ वैध पुण्यसे अधिक सार्थक और निर्मल होता है। परन्तु पूर्वोक्त नामापराध विद्यमान रहने पर श्रद्धाका क्रमशः ह्रास होने लगता है। ऐसी दशामें जीवन भर साधन करने पर भी नामाभासकी अवस्थासे उन्नति नहीं होती। इसलिये शास्त्रमें (पद्मपुराणमें) ऐसा कहा गया है—नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्। अविश्रान्ति-प्रयुक्तानि तान्येवार्थ-कराणि च ॥' नामापराधका त्याग करनेके लिये कुछ दिनों तक व्याकुल चित्तसे निरन्तर नाम करना चाहिए। ऐसा करनेसे अपराधकरनेका मौका ही नहीं मिलता है। अतः अपराध सहज ही दूर हो पड़ते हैं। अपराध दूर होने पर नामके प्रभावसे निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव और प्रेम तक अनायास ही उदित हो पड़ते हैं।

जब श्रद्धालु व्यक्ति निरपराध होकर मुख्य नाम का अनुशीलन करते हैं, तब उनमें स्वभावसे ही चार लक्षण देखे जाते हैं। श्रीमन्महाप्रभुजीने शिक्षा दी है—हे जीव! जो अपनेको तृणसे भी अधिक तुच्छ मानते हैं, जो वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होते हैं, स्वयं मान-प्रतिष्ठा न चाह कर दूसरोंको यथायोग्य सम्मान प्रदान करते हैं, वे ही हरिकीर्त्तनके अधिकारी हैं। इस जड़ जगतमें तृण अत्यन्त तुच्छ वस्तु होने पर भी उसका भी इस विश्वमें एक वस्तुके रूपमें अभिमान है, परन्तु चिद् परमाणु रूप जीवका इस जड़ जगतमें तनिक भी अभिमान करना उचित नहीं, क्योंकि जीवका चिदभिमान ही न्याय-संगत है, उसके लिये जड़ाभिमान नितान्त आरोपित और मिथ्या है। अपनी टहनियोंको काटनेवाले तथा अपनेको पत्थर मारनेवालोंको भी वृक्ष छाया और फल प्रदान करता है; अतः जड़ वस्तुसे श्रेष्ठ धर्मयुक्त जीवको अपना उपकार करनेवालों तथा अपकार करनेवालों दोनों प्रकारके व्यक्तियोंके प्रति सर्वदा दयाभाव रखना स्वाभाविक है, क्योंकि

दया जीवके स्वधर्मरूप भक्तिके अन्तर्गत एकधर्म विशेष है । नाम ग्रहीता स्वयं जड़ाभिमानजन्य ब्राह्मण आदि वर्ण, संन्यास आदि आश्रम, धन, रूप, बल, वीर्य, अधिकार, और पदके निरर्थक अभिमानसे रहित होकर वैष्णव मात्रको मान प्रदान करेंगे। भगवान्‌की कृपासे जिन आधिकारिक सत्त्वोंने ब्रह्मा और शिव आदिका पद प्राप्त किया है, उनका यथा-योग्य सम्मान करना चाहिए। इन कतिपय लक्षणोंके न होने पर ऐसा समझना चाहिए कि अभी पूर्वोक्त अपराध दूर नहीं हुए हैं।

उपरोक्त चारों लक्षणोंसे युक्त तथा निरपराध होकर नाम ग्रहण करनेसे भक्ति अहैतुकी, उत्तमा, केवला, शुद्धा, अमिश्रा, अकिंचना और निर्गुणा कही जाती है। यह भक्तिका अन्वयगत लक्षण है। इसके अतिरिक्त जीवकी बद्धावस्थामें दो व्यतिरेक लक्षणोंसे युक्त होने पर भक्ति शुद्धा कहलाती है। अन्याभिलाष शून्यता और ज्ञानकर्म आदिसे रहित होना ये ही भक्तिके दो व्यतिरेक लक्षण हैं। इसी तत्त्वकी शिक्षा स्पष्ट रूपसे देनेके लिये श्रीमन्महाप्रभु ने कहा है—हे जगदीश ! मैं धन, जन अथवा सुन्दरी कविता कुछ भी नहीं चाहता, मैं तो यही चाहता हूँ कि आप प्राणेश्वरके प्रति मेरी जन्म-जन्ममें अहैतुकी भक्ति बनी रहे। वर्णाश्रमधर्म प्रदत्त धर्म, अर्थ और काम-धन ही धन है, मैं यह सब कुछ भी नहीं चाहता। देह और देहानुगत स्त्री, पुत्र, कलत्र और प्रजारूपी जन भी मुझे नहीं चाहिए। कृष्णभक्ति-पोषिका विद्याको छोड़कर साधारण व्याकरण और अलङ्कारयुक्त काव्य और नाटक-रचना-शक्ति (किसी प्रकारकी हरिविमुखी विद्या) भी नहीं चाहता। मैं केवल फल-अनुसंधान-रहिता शुद्धा भक्तिके लिये ही प्रार्थना करता हूँ । संसारदुःख-विनाश एवं चिद्-स्वरूप-लाभरूप मोक्ष भक्तजनके लिये अनायास लभ्य किन्तु अवान्तर फल है, इसके लिये प्रयत्न और प्रार्थना द्वारा भक्तिके स्वरूपको दूषित करना उचित नहीं। भगवानकी कृपासे समय उपस्थित होने पर जड़ विषयों से मुक्ति अवश्य ही होगी। अतएव भक्तजन "जन्म-जन्ममें मुझे अहैतुकी भक्ति प्राप्त हो"—केवल यही प्रार्थना करेंगे, दूसरी कोई भी प्रार्थना न करेंगे।

तब संसारदुःख-सम्बन्धी अनुशीलन क्या सम्पूर्णरूपसे बन्द कर देना चाहिए ? नहीं। भक्तिभावको शुद्ध रख कर जितनी दूर तक हो सके संसारसे मुक्तिके सम्बन्धमें अनुशीलन किया जा सकता है। सिद्धान्त यह है कि श्रीकृष्णके पास संसारिक दुःखों से छुटकारा पानेके लिये कदापि प्रार्थना नहीं करनी चाहिए। यदि प्रार्थना इस रूपमें की जाय तो कोई दोष नहीं—हे माधुर्य रसके विषय श्रीनन्दनन्दन ! मैं तुम्हारा नित्यदास हूँ। तुम्हें भूलकर मायावैभवमें प्रवेशकर कर्मजालमय भयानक भव-समुद्रमें डूब रहा हूँ। इस दशामें मैं तुम्हारे चरणकमलोंका आश्रय करनेके लिये समीप पहुँचनेकी जितनी ही अधिक चेष्टा करता हूँ, उतना ही अधिक दूर होता जा रहा हूँ। तुम्हारी दया न होनेसे मेरे लिये अपने अप्राकृत स्वधर्मकी—तुम्हारे अकृत्रिम दासत्वकी प्राप्ति—सुलभ नहीं है। हे करुणामय ! तुम मुझे अपने चरण-कमलोंकी धूलिके समान कर अपने समीप रखो। ऐसा होनेसे मैं और कभी भी तुमसे विमुख होकर माया कारागारमें नहीं बद्ध होऊँगा, इस प्रकार प्रार्थना करते-करते जब वे करुणामय प्रभु हमें अपना चरणा-श्रय प्रदान कर देंगे उस समय जीव समस्त प्रकारके दुःख-क्लेशोंसे अनायास ही छुटकारा प्राप्त कर लेगा।

पहलेके पाँच श्लोकोंमें यह दिखलाया गया है कि सत्सङ्ग द्वारा प्राप्त कृष्णानुशीलनमयी श्रद्धा, साधु-गुरुचरणाश्रय, श्रवण-कीर्तनमय भजन, स्वरूपोपलब्धि-जन्य अविद्यारूप अनर्थ-नाश, निष्ठा रुचि, आसक्ति और तदनन्तर भाव या रति क्रमशः उदित होती है भावदशामें भक्तिका अखण्ड एकस्वरूपत्व सिद्ध होता है । नाम-कीर्त्तन उस समय अत्यन्त प्रबल होता है। क्षान्ति (क्षमा) अव्यर्थकालत्व, विरक्ति, मानशून्यता, आशाबन्ध (भक्ति अवश्य ही प्राप्त होगी ऐसी आशा), उत्कंठा, नाम कीर्तनमें रुचि, कृष्ण-गुण वर्णनमें आसक्ति और कृष्णवसति स्थानमें

प्रीति, इत्यादि रतिके लक्षण पैदा हो पड़ते हैं। शुद्ध-सत्त्व विशेषस्वरूप प्रेमरूप सूर्यके किरणपरमाणुको अर्थात् प्रेमकी प्रथम अवस्थाको भाव अथवा रति कहते हैं। भावके उदित होने पर नृत्य, गीत, लोटना-पोटना, अंगोंका टूटना, हुंकार, जंभाई, लम्बा श्वास आना, लोकापेक्षाशून्यता, लार गिरना, जोरों की हँसी, चक्कर आना, हिचकी आना—ये सब अनुभाव तथा स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण, अश्रु और प्रलय—ये अष्ट-सात्विक विकार थोड़े बहुत दिखलाई पड़ते हैं। अतएव साधक ऐसी दशा प्राप्त करनेके लिये प्रार्थना करते हैं—"हे गोपी-जनवल्लभ! मेरा ऐसा दिन कब होगा जब अमृतके समान तुम्हारा मधुर नाम उच्चारण करते करते मेरी आँखों से आँसुओंकी धारा प्रवाहित होगी, वाणी गद्गद होकर विकार प्राप्त होगी और सारा अंग पुलकित हो उठेगा? हे नामप्रभु! मैं भोग और मोक्षके लिये प्रार्थना नहीं करता, मेरी प्रार्थना तो एकमात्र पूर्णानन्दका विस्तार करने वाली भाव-दशाके लिये है।"

रतिरूपा भावात्मिका भक्ति प्रेमदशामें विभाव-अनुभाव, सात्विक और व्यभिचारी—इन चार भावों द्वारा परिपुष्ट होकर भक्तिरसके रूपमें परिणत हो जाती है। तब पूर्वोक्त अनुभाव और सात्विक-विकारसमूह सम्पूर्णरूपमें लक्षित होते हैं। ममताकी अधिकतासे भक्तका अन्तःकरण भलीभाँति मसृण (कोमल) और घनीभूत भावमय होकर प्रेमका पीठस्थान (मूलाधार) हो जाता है। उस समय भक्तिरसके आश्रय—भक्त और विषय—'कृष्णमें मुख्यसम्बन्ध भेदसे शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर ये पाँच मुख्य रस तथा दोनोंमें गौण सम्बन्धभेदसे हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र भयानक और विभत्स—सात गौण रस प्रकाशित होते हैं। जिस जीवकी रुचि जिस रसमें होती है, उसके लिये वही रस आश्रय योग्य होता है; परन्तु मधुर रस ही सर्वश्रेष्ठ रस है। उसमें प्रेम, प्रणय, मान, स्नेह, राग, अनुराग और महाभाव सम्पूर्ण रूपसे अवस्थित होते हैं। शान्त रसमें उल्लासमयी प्रीति रतिकी अवस्थामें लक्षित होती है। उस दशामें शान्त रस ही सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। वही रति अत्यधिक ममतासे युक्त होने पर दास्यरसके रूपमें लक्षित होती है। इस अवस्थामें प्रीतिके बाधक कारणसमूह निष्क्रिय हो पड़ते हैं। अत्यधिक विश्वासमय प्रेम प्रणयरूपमें सख्य रसमें लक्षित होता है। इस अवस्थामें विषयमें संभ्रमकी योग्यता वर्त्तमान रहने पर भी उसके प्रति संभ्रम नहीं रहता। अत्यधिक प्रीतिकी अवस्थामें कौटिल्या-भासमय भाववैचित्र्यका नाम मान है। इस अवस्थामें भगवान् भी प्रेममय भयको स्वीकार करते हैं। चित्तके अतिशय द्रवभावमय प्रेमको स्नेह कहते हैं। इस अवस्थामें महाबाष्प आदि विकारोंको देख कर भी अतृप्ति और विषयमें ऐश्वर्य रहनेपर भी सर्वदा अनिष्ट की आशंका बनी रहती है। मान और स्नेह वात्सल्यमें लक्षित होते हैं, अर्थात् शान्त, दास्य और सख्यमें लक्षित नहीं होते। अभिलाषात्मक स्नेहका नाम राग है। रागावस्थामें क्षणिक विरह भी असह्य होता है तथा मिलनका दुःख भी सुख प्रतीत होता है। वही राग निरन्तर अपने विषयीभूत तत्त्वको नये नये रूपमें अनुभव कराकर स्वयं नवीन रूपमें अनुभूत होकर अनुराग कहलाता है। इस अवस्थामें आश्रय और विषयका परस्पर अत्यन्त वशीभूत भाव होता है। विषयके सम्बन्धसे अन्यान्य प्राणियोंकी योनिमें जन्म लेनेकी लालसा होती है। विप्रलंभ भावकी बहुत ही अधिक स्फूर्त्ति होती है। असमोर्द्ध चमत्कार उन्मत्ततामय अनुराग को महाभाव कहते हैं। इस अवस्थामें मिलनके समय पलकोंका गिरना भी असह्य बोध होता है तथा पूरा कल्प भी क्षणभरका समय प्रतीत होता है। वियोग में क्षणमात्रका समय भी कल्पके समान लम्बा समय सा लगता है। मिलन और वियोगमें नाना—प्रकार के सात्विक विकार उदित होते हैं। इन लक्षणोंका दिग्दर्शनमात्र श्रीमन्महाप्रभुजीके वचनोंमें दिखलायी पड़ता है: "अहा! गोविन्दके विरहमें मेरा एक एक

निमेष युगके समान बीत रहा है, आँखोंसे वर्षा-काल की जल-धाराकी तरह अश्रु-वर्षा हो रही है एवं सारा संसार शून्यसा लगता है।" तात्पर्य यह कि जड़बद्ध जीवके लिये पूर्वरागमय विप्रलंभ अत्यन्त उपयोगी होता है।

प्रेमदशा-प्राप्त जीवका भाव इस प्रकार होता है—मैं श्रीकृष्णके चरणकमलोंके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानती, वे कृपा कर मुझको मर्माहत ही करें। वे प्रेम-लम्पट हैं। वे मुझे जिस रूपमें रख कर सुखी हों, मुझे वही अवस्था स्वीकार है; क्योंकि वे मेरे प्राणनाथ हैं। प्रेमदशामें भक्तजनका जीवन कृष्णमय हो पड़ता है। उस समय भक्त और कृष्ण दोनोंके बीच बड़ा ही मधुर आकर्षणयुक्त सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जिस प्रकार चुम्बक और लोहा उचित दूरी पर अवस्थित होने पर लोहा चुम्बककी ओर आकर्षित हो पड़ता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण-प्रीति द्वारा परिमार्जित चित्त कृष्णके प्रति आकर्षित हो पड़ता है। यही श्रीकृष्ण और जीवके बीच पूर्व सिद्ध धर्म है। जबतक जीव कृष्णविमुख होकर जड़सुखोंका अन्वेषण करता रहता है, तब तक उसमें यह धर्म लुप्तप्राय रहता है, परन्तु सान्मुख्य उदित होते ही कृष्ण द्वारा आकर्षित होने की क्रिया रूप वह धर्म लक्षित होता है। इस धर्मको प्रकट करना ही साधन है। श्रीकृष्ण गोपियोंसे कहते हैं—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जर गेहशृंखलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥

(भा० १०।३२।२२)

मेरी प्यारी गोपियों! मुझसे तुम्हारा यह संयोग सर्वथा निर्मल और सर्वथा विशुद्ध प्रेममय है। तुमने मेरे लिये घर-गृहस्थीकी उन दुर्जय बेड़ियोंको तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े-बड़े योगी यति भी नहीं तोड़ पाते। यदि मैं देवताओंके समान दीर्घायु होकर अनन्त काल तक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं जन्म-जन्मके लिये तुम्हारा ऋणि हूँ; तुम अपने साधु-स्वभाव से, प्रेमसे ही मुझे उऋण कर सकती हो।

इस शिक्षाष्टकमें श्रीमन्महाप्रभुजीने सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन रूप ज्ञान-विज्ञानकी सहायतासे साधन-भाव-प्रेम रूप परमतत्त्वका अनुसंधान करनेका उपदेश दिया है—'हे जीव! यदि तुम्हारे भाग्यका उदय हुआ हो तो कर्म और ज्ञान आदि समस्त प्रकार की चेष्टाओंको छोड़कर तुम अत्यन्त आग्रहपूर्वक इस शिक्षाष्टकका अनुभव करो।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीचैतन्यार्पणमस्तु।

श्रीविग्रह एवं मठ-मंदिर

श्रीश्री आचार्यदेवके भाषणसे

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ५, संख्या ३, पृष्ठ ६९ से आगे]

भगवानका मन्दिर निर्गुण होता है

प्राकृत अर्थात् मायिक सत्त्व, रज और तम गुणोंको ही हेय कहा गया है। भगवानके मंदिर, भगवानके धाम प्राकृत गुणोंके अन्तर्गत नहीं होते। सत्त्वगुण भलीभाँति निर्मल होने पर निर्गुण कहलाता है। शास्त्रोंमें कहीं-कहीं उसे विशुद्ध सत्त्व भी कहा गया है। शुद्ध-सत्त्व और विशुद्ध-सत्त्व एक नहीं है। सत्त्वगुण मायिक होता है। शुद्ध-सत्त्व—जिसमें मायिक दोष केवल दबे हुए हैं। परन्तु विशेष रूपसे शुद्ध अर्थात् विशुद्ध-सत्त्व कहनेसे शुद्धसत्त्वसे

अतीत निर्गुणका बोध होता है अथवा अप्राकृत गुणोंके समावेशका बोध होता है। सत्त्वगुण—निर्गुणकी छाया है। शास्त्रकारोंने विशुद्ध-सत्त्वको ही निर्गुण बतलाया है। तदतिरिक्त दूसरे प्रकारकी निर्गुण-धारणाको मिथ्या और काल्पनिक कहा है। हम श्रीमद्भागवतमें सत्त्व, रज, तम और निर्गुण—इनकी स्थिति और आश्रयके सम्बन्धमें यह देख पाते हैं कि—खेल-कूद, ताश-पाशा, द्वन्द्व-प्रतिद्वन्द्व, हिंसा-द्वेष, आदिके स्थानोंको 'तामस' स्थान कहा गया है। ग्राम, शहर-बाजार और साधारण जनसमूहके स्थितिक्षेत्रको 'राजस' स्थान बतलाया गया है; पर्वत, गुफा, वन, अरण्य आदि निर्जन क्षेत्रोंको 'सात्त्विक स्थान निर्धारित किया गया है। एवं भगवानकी विहार और वास-भूमिको (मठ-मंदिर आदि को) निर्गुण माना गया है। स्वयं भगवान् कहते हैं—

वनन्तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते।
तामसं द्यूतसदनं 'मन्निकेतन्तु निर्गुणम्॥
(श्रीमद्भागवत ११।२५।२५)

वे और भी कहते हैं—'मन्निष्ठ निर्गुण स्मृतम्', 'निर्गुणो मदपाश्रयः' 'मत् सेवायान्तु निर्गुणा' आदि वचन 'निर्गुण' के सम्बन्धमें स्मरण रखने योग्य हैं।

आपलोग पिछलदा ग्राममें उपस्थित हुए हैं। भगवान्का विहार-क्षेत्र होनेके कारण पिछलदा अप्राकृत धाम है। यह राजस स्थान नहीं है। भगवतत्त्व सर्वदा अप्राकृत होता है।

प्राकृत करिया माने विष्णु-कलेवर।
विष्णु निंदा नाहि आर उहार ऊपर॥
(श्रीचैतन्यचरितामृत)

गीतामें भी—

अवजानन्ति मां मूढाः मानुषी तनुमाश्रितम्।
परंभावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥
(गीता० ५।११)

इत्यादि वचनोंसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने हमें सावधान किया है कि मूढ़ व्यक्ति प्राकृत मनुष्य समझ कर मेरी अवज्ञा करते हैं; क्योंकि मैंने मनुष्य के समान शरीर धारण किया है। असुर और दानव ही भगवानको मनुष्य समझते हैं। परन्तु इन मूढ़ और असुर श्रेणीके मनुष्योंकी मान्यतासे ही भगवान् प्राकृत मनुष्य नहीं हो जायेंगे। श्रीकृष्ण और श्रीचैतन्य-देव किसी प्राकृत भूमिकामें प्रवेश नहीं करते; वे नित्यकाल विशुद्ध-सत्त्वमय अप्राकृत निर्गुण भूमिका में ही विचरण करते हैं। अतएव मैं आपलोगोंसे निवेदन करता हूँ कि आपलोग अपनी प्राकृत अभिज्ञतारूपी मैलको भक्तिके पवित्र जलसे भलीभाँति धोकर इस स्थानके अप्राकृतत्त्व और निर्गुणत्त्वका अनुभव करें। आपलोग सामने जो मंदिर और सेवक-खंड देख रहे हैं, वह सब कुछ निर्गुण विशुद्ध-सत्त्व है। किसी भी सगुण स्थानमें भगवान् और उनके भक्तोंका निवास नहीं होता। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—भगवान्का मंदिर निर्गुण होता है; भगवान्के अनन्य आश्रितजन और सेवकगण निर्गुण होते हैं। श्रीमद्भागवतमें स्वंय भगवान् श्रीकृष्णने ऐसा कहा है; अतएव यह वेदवाणी स्वरूप है।

गीता और श्रीमद्भागवतको वेद-स्वरूप कहने से आप लोगोंको आश्चर्य नहीं करना चाहिए। क्योंकि वेद ईश्वरके निःश्वास-स्वरूप हैं—यह सर्व-मान्य तथ्य है। आचार्य शंकरने भी ऐसा स्वीकार किया है। निःश्वास नासिकासे निकलता है और वाणी मुखसे निकलती है। परन्तु नासिकासे मुख (बदन) कमलकी श्रेष्ठता सर्वत्र स्वीकृत है। अतएव नासाध्वनिसे मुख निःसृत वाणी सर्वतोभावेन श्रेष्ठ है। इसीलिये स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जगज्जीवोंके प्रति दयार्द्र होकर अपने अधरामृत-स्वरूप श्रीगीता और श्रीभागवतमें जिन वाणियोंको व्यक्त किये हैं, वे साक्षात् वेद, और तो क्या वेद-वाणियों से भी अधिक गुरुत्वपूर्ण हैं।

साकार और निराकारवाद

हमारे देशमें अनेक प्रकारके निराकारवादी सम्प्रदाय दिखलायी पड़ते हैं। वास्तवमें निराकारवादी

साकार चिन्तासे मुक्त नहीं होते। वे साकारको ही केन्द्र करके निराकारके काल्पनिक ध्यानमें मग्न रहना चाहते हैं। निराकारके इस कल्पित ध्यानसे ही हमारे देशमें नास्तिकताकी उत्पत्ति हुई है। ईश्वरका आकार नहीं है, कोई रूप नहीं हैं, उनमें गुण नहीं हैं, उनमें शक्ति नहीं है। यह सब कुछ मिथ्या कल्पना है; इस अलिक कल्पनाकी जड़ है—बौद्धोंवादका शून्यवाद अथवा वेद-विरुद्ध नास्तिक्यवाद। और ईश्वरके नित्यआकार या स्वरूपको स्वीकार करना ही आस्तिक्यवाद है। जो भगवान्‌के नित्य 'रूप' को अस्वीकार करते हैं, वे नास्तिक हैं। फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि निराकारवादी नास्तिक पुरुष भी सरल विश्वासी धार्मिक जनताके चित्तमें भ्रम उत्पन्न कर उनके निकट अपनेको आस्तिक बतलानेमें तनिक भी नहीं हिचकते। मैं इन नास्तिकोंकी समालोचनामें अधिक समय नहीं देना चाहता। परन्तु उनके सम्बन्ध में कुछ आलोचना नहीं होनेसे मेरे पूर्व-प्रस्तावका सिद्धान्त उपेक्षित हो पड़ता है। अतएव उन नास्तिक सम्प्रदायोंके कतिपय सम्प्रदायोंके विचारों और मतवादोंकी संक्षेपमें कुछ आलोचना कर रहा हूँ।

ईसाइयोंका निराकारवाद एवं कर्मवाद

सबसे पहले पाश्चात्य देशीय ईसाई धर्मावलम्बियों को ही लीजिए। ये लोग भारतीय हिन्दू-धर्मोपासकों को मूर्त्तिपूजक (Idolater) बतलाकर उन्हें हेय प्रमाणित करनेकी चेष्टा करते हैं। यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि जो लोग ईश्वर अथवा ईश्वरकी शक्तिकी श्रीमूर्त्ति स्वीकार करते हैं या गुणों का आकार मानते हैं, वे ही ईसाइयोंके आक्रमणके पात्र हैं। परन्तु जो लोग आचार-व्यवहार और विचारधाराके विषयमें ईसाइयोंके साथ सामंजस्य रख कर उनके कदममें कदम मिलाकर चलते हैं, वे उनके (ईसाइयोंके) आक्रमणसे बचे हुए हैं। अतएव मेरा यह कहना बिलकुल असंगत न होगा कि आधुनिक निराकारवाद बहुत कुछ अंशोंमें ईसाई मतकी ही देन है और हमारे देशमें जो निराकार ज्ञानवाद प्रचलित है, वह ईसाई धर्मका ही प्रतीक है—ऐसा कहना भी गलत नहीं होगा।

इस देशमें वर्तमान भारत-सेवाश्रम-संघ और रामकृष्ण-मिसन आदिका कर्मवाद सम्पूर्णरूपसे ईसाईधर्मका ही जूठन है। इसका कारण यह है कि हमारे देशका प्राचीन कर्मवाद सर्वतोभावेन वेद-विधिमूलक है। अतएव वैदिक कर्मके अतिरिक्त दूसरे कर्मोंका उल्लेख गीता या अन्यान्य स्मृति-संहिता आदि शास्त्रोंमें नहीं है। गीताके कर्मवादको ईसाई धर्मके कर्मवादका परिपोषक मानना भूल है। तथाकथित कर्मीमिसन अथवा संघ आदिका कर्म प्रयास सनातन वैदिक कर्मके अनुकूल नहीं है। वैदिक कर्म ही कर्म है। इसके अतिरिक्त वर्तमान कर्मवाद अकर्म अथवा विकर्म है। वास्तवमें आधुनिक कर्मवाद ईसाई कर्मवाद हैं। हमारे देशमें ईसाई मिसनरियों ने स्कूल, कॉलेज, पाठशाला और अस्पताल आदि दातव्य प्रतिष्ठानोंकी स्थापनाकर इनके द्वारा प्रलोभन दिखलाकर देशका अत्यन्त अहित किया है। रामकृष्णमिशन या विवेकानन्दमिशनका भी यही आदर्श कर्मवाद है। अनाजकल भारत सेवाश्रम संघ भी इसी श्रेणीके कर्मवादका उपासक है। इनके प्रचारका ही दुष्परिणाम है कि आज हमारे देशके भ्रातृवृन्द वैदिक सनातन धर्मका परित्याग कर ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, जैन, आर्यसमाजी, कबीरपन्थी और नानकपन्थी होते जा रहे हैं। अतएव ईसाई कर्मवादी और विभिन्न निराकारवादी ही सब प्रकारसे हमारे देशके धर्म-शत्रु हैं।

ईसाईमतके अनुसार साकारवाद

जिन ईसाईयोंकी बातें हो रही हैं, उनका निराकारवाद ही यदि सर्वश्रेष्ठ होता तो इतने बड़े-बड़े गीर्जाघरों में (Church) और उनकी चोटी पर तथा उनके भीतर क्रॉस (Cross) चिह्नकी स्थापनाकर वहाँ उपासना-क्षेत्र निर्माणका अर्थ क्या है ? निराकार पन्थियोंका कर्त्तव्य तो यह होना चाहिए कि खुले मैदानमें आकाशकी ओर आँखें कर वे परमेश्वरके

निराकारत्वकी उपासना करें। अथवा असीम समुद्र के अतल गर्भमें लीन होकर, ससीम गीर्जाघरोंको धूलमें मिलाकर अथवा जलाकर खाकमें मिलाकर उन्हें निराकारमें बदल दें। निराकारकी प्रधानता माननेसे ऐसा करना ही उचित होगा। और भी एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि—उनका सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है—बाइबिल (Bible); इसमें मानव सृष्टिके सम्बन्धमें लिखा है—'God Created men out of His own image.' अर्थात् 'परमेश्वरने अपने रूपके समान मनुष्यको बनाया हैं। अतएव ईसाई धर्मावलम्बियोंका सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि वे उपरोक्त वाक्यको बाईबिल से मिटा दें। क्योंकि 'परमेश्वरने मनुष्यको अपने रूपके समान बनाया है'—यदि इस वाक्यको बाइबिल का सुसिद्धान्त माना जाता है, तब भगवान निराकार प्रमाणित कैसे हुए ? इस वचनसे तो यही प्रमाणित होता है कि भगवानका मनुष्यके समान रूप है। बाइबिलमें इसी प्रकारके वचन अनेक स्थलोंमें लिखे हैं। आधुनिक प्रोटेस्टैन्ट और कैथोलिक मिशनरियों के लोग उक्त वाक्यको टीका-टिप्पड़ी और Exlanation द्वारा रूपान्तरित करनेकी जितनी भी चेष्टा क्यों न करें, उनकी यह चेष्टा किसी प्रकार भी सफल होती नहीं दिखाई देती। यदि बाईबिल मुद्रित और प्रकाशित होनेके पहले ही वे लोग बाईबिलसे 'God created men out of His own image'—इस वाक्यको निकाल कर उसे प्रकाशित किये होते, तो आधुनिक ईसाई धर्मके प्रचारक पादरीमहोदयों को निराकारवाद प्रचारकी अच्छी सुविधा होती। परन्तु जब उक्त वचन अभी तक बाईबिलसे मिटाया नहीं जा सका है, तब वे लोग वैदिक सनातन-धर्मी आचार्यवर्ग द्वारा प्रवर्त्तित साकारवादके चरणोंमें सिर झुकानेके लिये बाध्य हैं।

डारवीन पाश्चात्यदेशके एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं। उन्होंने मनुष्य आकारको सर्वश्रेष्ठ आकृति माना है। केवल यही नहीं, मनुष्यकी आकृतिका विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि समस्त प्रकारके पार्थिव आकार मनुष्य आकृतिके अन्दर विद्यमान हैं। श्रेष्ठ आकारमें निम्न श्रेणीके समस्त आकारोंका समावेश होता है, यह 'संभव' प्रमाण और 'कैमुतिक' न्यायके द्वारा भी समर्थित होता है।

इस्लामधर्म और साकार-निराकारवाद

हमारे देशके मुसलमान भाई भी निराकारवादी हैं। हजरत महम्मदके जन्मके पहले अरब देशमें आधुनिक निराकारवाद प्रचलित नहीं था। मुसलमानोंकी धारणानुसार निराकार उपासना हजरत महम्मदकी देन है। ईसाई और मुसलिम चिन्ताधाराकी मौलिकताकी छानबीन करनेसे पता चलता है कि साकार उपासना ही दोनों मतोंकी मौलिक उपासना है। ईसामसीहके लगभग ६०० वर्ष पश्चात् मक्का और मदीनेमें महम्मदका प्रचार आरंभ हुआ है। तभी से महम्मदीय धर्मका नाम इस्लाम धर्म अथवा मुसलमान धर्म हुआ है। महम्मदके समय मक्का और मदीनामें जिस प्रकारकी उपासना प्रचलित थी, वह धारावाहिकरूपमें शृङ्खलाबद्ध न थी। इसलिये उस उपासनाकी कोई निश्चित संज्ञा नहीं दी गयी है। अतएव महम्मदको ही इस्लाम धर्मका प्रवर्त्तक माना जाता है। उन्होंने जिस कुरानशरीफकी रचना की है वह उन्हें गाब्रियेलसे मिली थी। गाब्रियेलको स्वर्गीय दूत बतलाया गया है। यदि गाब्रियेल कोई स्वर्गीय दूत हैं, तब स्वर्ग या विहिस्तको निराकार-स्थान कैसे कहा जा सकता है ? श्रोतृमण्डली स्वयं इसका विचार करे। मेरा कहना यह है कि ईसाई और इस्लाम धर्मोंमें परस्पर अनेक विषयोंमें साम्य है।दोनोंके पूर्वजोंकी परम्परा (Genealogical Table) का अनुसंधान करने पर यह पता चलता है कि दोनोंके पूर्व-पुरुष एक ही सम्प्रदायके थे। क्योंकि यिशु क्राईस्टकी माता 'मेरी' हजरत–इसराइलके वंशकी थी। यह बात हजरत महम्मदसे लगभग ५०० वर्ष पहले की बात है। अतएव इस्लाम

धर्मका उस समय नामो-निशाना तक नहीं था। दूसरी बात यह है कि ईसाइयोंके बाईबिलकी विचार-धारा मुसलमानोंके 'हदीस' की विचारधारासे बिल-कुल मिलती जुलती है। *

मैं यहाँ हदीसका एक आयात (प्रमाण वचन) जितना मुझे स्मरण है, उद्धृत कर रहा हूँ। यह आयात बाइबिलकी ही प्रतिध्वनि है—'इन्नालाहा खालाका मेन् सूरातहि।' 'सूरत' का अर्थ है—आकार; अर्थात् खुदाने अपने आकारकी तरह मनुष्यको बनाया है। अब पाठक दोनोंकी तुलना कर स्वयं ही विचार करें'—बाइबिल का "God created men out of his own image" (भगवानने अपने आकारके समान मनुष्यकी सृष्टि की है)—इसके साथ 'इन्नालाहा खालाका मेन सूरातहि' का क्या भेद है? अतएव कुरान और बाइबिल दोनों ग्रन्थोंद्वारा ही परमेश्वरका नराकार अनुमोदित है। सारे विश्वमें जो सबसे अधिक निराकारवादी है, उनके ग्रन्थोंसे भी भगवान् निरा-कार प्रमाणित नहीं होते। वरं उनके द्वारा स्पष्ट रूप में उनकी नराकृति ही सिद्ध होती है। ऐसी दशामें निराकारके विषयमें ईसाइयोंके सम्बन्धमें मैंने जो युक्ति पेश की है, वही युक्ति मुसलमान भाइयोंके सम्बन्धमें भी पेश करनेमें कोई दोषकी बात नहीं होगी। मुसलमान धर्म्मावलम्बी भी निराकारका पक्षपाती होकर भी मस्जिद क्यों निर्माण करते हैं? मस्जिद निर्माण न कर खुले मैदानमें, आकाशमें अथवा समुद्रमें निराकारका ध्यान करनेसे भी तो चल सकता था? ईसाइयों और मुसलमानों द्वारा सनातन वैदिक धर्मके प्रति व्यवहृत पौत्त-लिकता अथवा भूतपूजा या मूर्त्तिपूजा उनके अपने-अपने मतोंमें भी प्राचीनकालसे ही प्रचलित है।

बौद्ध अर जैनमत एवं साकारवाद

बौद्ध और जैनधर्मावलम्बी निराकारवादी होने पर भी उनके समाजमें प्रकांड-प्रकांड प्रस्तरमयी मूर्त्तियाँ देखी जाती हैं। बुद्धगया, काशी, सारनाथ, अजन्ता, एलोरा आदि स्थान बौद्ध-मूर्त्ति-प्रतिष्ठाके साक्षी-स्वरूप हैं। माउन्ट आबू (Mrunt Abu) पण्ढरपुर, कलकत्ताका परेशनाथ-मन्दिर आदि स्थान-समूह जैन-मूर्त्ति-पूजाके निदर्शन-स्वरूप हैं। वास्तवमें बौद्धों और जैनियोंकी मूर्त्तियाँ श्रीविग्रह नहीं, केवल पुतलीमात्र हैं; क्योंकि इन मूर्त्तियोंका नित्यत्व स्वीकृत नहीं होता, केवल पुण्यस्मृतिके उद्दीपन मात्रके लिये इनकी प्रतिष्ठा की जाती है। ये मूर्त्तियाँ उपास्य विग्रहके रूपमें पूजित नहीं होती हैं। प्रसिद्ध जगन्नाथ पुरीके प्राचीन इतिहाससे भी बौद्धोंकी मूर्त्तिपूजा प्रमाणित है। जिस समय भारतमें बौद्धोंका प्रबल प्रताप था, उस समय एक बार उन्होंने जगन्नाथदेव के मन्दिर पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया था। उस समय वे श्री जगन्नाथ देवको 'बुद्ध-देव', श्री सुभद्रादेवीको 'कीर्त्ति' एवं श्रीबलरामको 'धर्म'—कल्पना कर सम्मान प्रदान करते थे। पश्चात् आचार्य शंकरने बौद्धोंको भारतसे खदेड़कर जगन्नाथ-बलदेव और सुभद्राजीकी मूर्त्तियोंका पुनः प्रकाश किया। श्रीविग्रहका नित्यत्व स्वीकार नहीं करनेसे वह पौत्तलिकता या ब्युतपरस्तवाद (पुतली पूजा) का ही प्रतीक होता है। इस गूढ़ रहस्यको न समझ सकनेके कारण ही मुसलमान और ईसाई हिन्दू-धर्मोपासनाको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं! बौद्धों और जैनोंके शून्यवाद और निरीश्वरवादमें कोई अन्तर नहीं है।

शंकराचार्य और साकार-निराकारवाद

दक्षिण-देशीय आचार्य शंकरके निराकारवादमें भी साकारवाद व्यावहारिक रूपमें पंचोपासनाके माध्यमसे स्वीकृत है। "साधकानां हितार्थाय ब्रह्मण:

* जिस प्रकार सनातन धर्ममें पुराणोंको वेदकी यथार्थ व्याख्याके रूपमें माना जाता है, उसी प्रकार मुसल-मान-समाजमें भी हदीसको कुरानकी व्याख्याके रूपमें सम्मान दिया जाता है।

रूप कल्पना"—इस वाक्यको ही हम पौत्तलिकताकी आधारशिला समझते हैं। साधकके हितके लिये ही 'रूप की कल्पना' है। हित या उद्देश्यकी सिद्धि होने पर रूपकी और आवश्यकता नहीं रहती। तात्पर्य यह कि उनका सिद्धान्त है—रूप द्वारा अरूपकी प्राप्ति; परन्तु यह युक्ति-विरुद्ध है। श्रीभगवानके श्रीविग्रह या उनकी श्रीमूर्त्ति अथवा नराकृति परब्रह्मका नित्यत्व अस्वीकृत होने पर पौत्तलिकता उपस्थित होने के लिये बाध्य है। व्यावहारिक आकार या औपचारिक आकार स्वीकार कर अन्तमें श्रीमूर्त्तिको फेंक देना अथवा उसे जलाशयमें विसर्जन दे देना पौत्तलिकता के अन्तर्गत है। इसीलिये हमलोग ज्ञानवादियोंके साकारवाद अथवा 'ब्रह्मकी रूपकल्पना' वादको वेदान्त दर्शनके विरुद्ध मानते हैं। इसका कारण यह है कि वेदान्त दर्शनमें रूपकल्पनावादका निषेध है— 'न प्रतीकेन हि सः।' (ब्र० सू० ४।१।४) प्रतीक उपासना द्वारा मुक्तिकी कोई संभावना नहीं है। परन्तु 'सः' इस पद से साक्षात् स्वयंरूप भगवानकी नित्य उपासना ही मोक्षका कारण प्रतिपादित होती है। 'प्रतीक' शब्दके अधिकरण-अर्थमें अर्थात् 'प्रतीके'—'प्रतीकमें ईश्वर बुद्धि' अथवा तृतीया-अर्थमें अर्थात् प्रतीकेन 'प्रतीक द्वारा' किसी भी प्रकारसे अर्थ करने पर वेदान्त-दर्शन प्रतीकोपासनाको मोक्षका कारण नहीं स्वीकार करते। अतएव साधकके हितके लिये 'ब्राह्मणः रूप-कल्पना'— वैदिक उपासना नहीं है। वैसी उपासना पौत्तलिकताकी ही पोषिका है। भगवानकी नैमित्तिक मूर्त्ति सिद्धिकालमें विसर्जित हुआ करती है और अन्तमें उपास्य वस्तुको निराकार ठहरा कर नास्तिक बननेमें सहायता करती है। हम ऐसे निराकारवादका समर्थन करनेके लिये प्रस्तुत नहीं हैं। आचार्य शंकरका निराकारवाद अन्यान्य प्रकारके निराकारवादोंकी अपेक्षा विश्वमें सर्वाधिक प्रसिद्ध होने पर भी एक प्रकारकी नास्तिकता ही है।

भारतीय मतोंकी समालोचना

आचार्य शङ्करके पश्चात, रामानुज, मध्वाचार्य, रामानन्द और निम्बार्क आदि मनिषियोंने धर्म-सम्प्रदायोंकी स्थापना कर विश्वमें अप्राकृत चिन्मय साकारवादका नित्यत्व प्रमाणित कर हिन्दू धर्मका यथार्थ कल्याण किये हैं। आप सभी उनकी विधियोंके अनुसार अर्चन-पूजन आदि करते आ रहे हैं। यहाँ उनकी समालोचना नहीं की गयी।

आसाम-देशीय शङ्करदेवका साकार निराकार

लगभग ५०० वर्ष पहले आसाम-प्रदेशमें शंकर देवने 'महापुरुषिया' नामक एक धर्म-सम्प्रदायका सङ्गठन किया है। वास्तवमें वे अद्वैतवादी हैं। श्रीमद्भागवतके ऊपर निर्भर रह कर भी उनके क्रिया-कलापोंके माध्यमसे साकार और निराकारवादका जो विचार-प्रवाह प्रकाशित हुआ है, उसका हम सम्पूर्ण रूपसे अनुमोदन नहीं कर सकते। यद्यपि उन्होंने कृष्ण-उपासनाको ही श्रेष्ठ उपासना स्वीकार किया है, तथापि उन्होंने कृष्णकी नित्य अप्राकृत मूर्त्तिकी अर्चा (श्रीविग्रह) स्वीकार नहीं किया है। सारे आसाममें कहीं भी शङ्करदेव अथवा उनके शिष्य माधवदेवादि द्वारा प्रतिष्ठित श्रीकृष्णकी अथवा श्रीराधाकृष्णकी एक भी अर्चामूर्त्ति नहीं मिलेगी। कृष्णकी काल्पनिक मूर्त्तिका अर्चन-पूजन भी पौत्तलिकताके ही अन्तर्गत है। महापुरुषिया धर्मावलम्बी लोग शङ्करदेव और उनके प्रधान शिष्य माधवदेवके रचित ग्रन्थोंको किसी घरमें स्थापित कर उन्हींकी पूजा और भोग-आरति आदि कर उन्हींका प्रसाद ग्रहण करते हैं—यही उनका महोत्सव है। इनकी यह विधि कुछ हद तक सिख-सम्प्रदायसे मिलती-जुलती है अथवा यह भी हो सकता है कि सिखोंने ही आसाम-प्रदेशीय शङ्करदेवके मतका अनुकरण किया हो। जैसा भी हो, महापुरुषिया-सम्प्रदायमें साकारवादकी प्रतिच्छवि दिखलाई पड़ने पर भी हम उसे निराकारवादी सम्प्रदाय कह सकते हैं। आसाम-प्रदेशीय शङ्करदेवने अपने 'श्रीचैतन्य-प्रतिमा' नामक पद्यमें श्रीमन्महाप्रभुको स्वयं भगवान और अवतार माना है। यह उनकी निरपेक्ष दृष्टिका परिचय है—इसमें सन्देह नहीं। उनके समाज-संस्कार और दुर्नीति-त्याग सम्बन्धी उपदेश गौड़ीय-वैष्णव-मतके समान ही हैं। (क्रमशः)

ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञानकेशव गोस्वामी महाराज

उपनिषद् वाणी

कठोपनिषद्

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ५, संख्या ३, पृष्ठ ५६]

नचिकेताकी परीक्षा पूरी हुई। उसकी दृढ़ निश्चयता, उसका परम वैराग्य और असीम निर्भीकता देख कर यम महाराज बड़े सन्तुष्ट हुए और उसे आत्मविद्या श्रवण करनेका उपयुक्त अधिकारी जान कहने लगे—मनुष्य-शरीर अतीव दुर्लभ है। यह अन्यान्य योनियोंकी भाँति केवल विषय भोगोंको भोगनेके लिये ही नहीं मिला है। मनुष्य इस शरीर द्वारा भले बुरेका विवेचन कर यथार्थ सन्मार्ग पर चल सकता है, पुनः पशु-तुल्य जीवन भी बिता सकता है। मनुष्यमें दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं—(१) श्रेय अर्थात् सांसारिक सुखोंका वास्तविक स्वरूप जानकर उनसे विरक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त करनेकी प्रवृत्ति और (२) प्रेयः अर्थात् स्त्री, पुत्र धन, गृह, सम्मान, प्रतिष्ठा आदिको परम सुखकर जान कर उन्हें प्राप्त करनेकी प्रवृत्ति। इस प्रकार ये श्रेयः और प्रेय मनुष्यको अपनी अपनी तरफ आकर्षित किये हुए हैं। अधिकांश लोग भोगोंमें प्रत्यक्ष सुख है, ऐसा मान कर प्रेय पदार्थोंके लिये ही साधन करते हैं, परन्तु कोई कोई भाग्यवान् मनुष्य ही भगवानकी कृपासे प्राकृत भोगोंकी आपात-रमणीयता और परिणाम-दुःखताका रहस्य जानकर, उनसे विरक्त होकर श्रेयकी प्राप्तिके साधनमें प्रवृत्त होता है। इन दोनों प्रकारके मनुष्योंमेंसे जो भगवान्की कृपासे श्रेयःका साधन करते हैं, उनका यथार्थ कल्याण होता है। वे सदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंसे सर्वथा छुटकारा पाकर अनन्त आनन्दका अधिकारी हो जाते हैं। परन्तु सांसारिक सुख रूप प्रेयके साधनमें लगा हुआ मनुष्य भ्रमवश सुख जैसे प्रतीत होने वाले अनित्य भोगोंको ही प्राप्त करता है, जो वास्तवमें दुखरूप ही हैं।

अधिकांश लोगोंका पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं होता। इसलिये वे अनित्य भोगोंमें आसक्त होकर मनुष्य जीवनको पशुकी तरह बिताते हैं। परन्तु जिन्हें पुनर्जन्ममें विश्वास है, ये श्रेयः और प्रेय दोनोंकी विवेचना कर प्रेयकी उपेक्षा करते हैं तथा श्रेयको ग्रहण करते हैं। परन्तु क्षुद्र बुद्धिवाले मनुष्य विवेक शक्तिके अभावके कारण योग और क्षेमकी सिद्धिकी अभिलाषासे प्रेयको ही ग्रहण करते हैं। जो प्राप्त नहीं है, भोगके लिये उसे प्राप्त करना तथा प्राप्त वस्तुओंकी रक्षा करनेका नाम योग-क्षेम है।

नचिकेता! तुम बड़े बुद्धिमान, विवेकी और वैराग्यवान हो। अपनेको बड़े चतुर, बुद्धिमान, तार्किक समझने वाले मनुष्य भी भोगोंके जालमें फँस जाते हैं। परन्तु तुमने पुत्र, पौत्र, हाथी, घोड़ों, गोधन, भूमि, पृथ्वीका साम्राज्य, रत्नमयी माला और तो क्या, स्वर्गीय सुन्दरियोंकी भी उपेक्षा कर दी। अतएव तुम अवश्य ही परमात्मतत्त्व श्रवणके अधिकारी हो।

विद्या और अविद्या नामसे प्रसिद्ध ये दो साधन परस्पर विरुद्ध और भिन्न भिन्न फल देने वाले हैं। जो भोगोंमें आसक्त होता है, वह कल्याण-साधनके मार्ग पर आगे बढ़ नहीं सकता और कल्याण-मार्गका पथिक भोगोंकी ओर दृष्टि तक नहीं डालता। वह सब प्रकारके भोगोंको दुःख-रूप मानकर उन सबका परित्याग कर देता है। हे नचिकेता! तुम वास्तवमें विद्याके अभिलाषी हो, क्योंकि बड़े से बड़े भोग भी तुम्हारे मनमें किञ्चितमात्र भी लोभ नहीं उत्पन्न कर सके।

परन्तु अविद्याके भीतर स्थित होकर भी अपनेको बुद्धिमान और विद्वान माननेवाले बहुतसे मूर्ख लोग नाना-प्रकारकी योनियोंमें इधर-उधर भटकते हुए वैसे

ही ठोकरें (दुःख) प्राप्त होते हैं जैसे अन्धे मनुष्य द्वारा चलाये जानेवाले अन्धे विपथगामी होकर दुःख-कष्ट भोगते हैं। सांसारिक भोग-सम्पत्ति आदि-के मोहसे मोहित मूर्खोंको परलोक नहीं सूझता। वे भोगोंमें आसक्त होकर मनमाना आचरण करते हैं। वे मूर्ख तो यही समझते हैं कि जो कुछ यहाँ प्रत्यक्ष दिखलाई देता है, यही लोक है। यही सत्य है, यही सब कुछ है। मृत्युके पश्चात् और क्या है? यहाँ जितना विषय-सुख भोग लिया जाय उतनी ही बुद्धिमानी है। परलोकको किसीने भी नहीं देखा है। परलोक तो केवल लोगोंकी कल्पनामात्र है। उनके अन्तःकरणमें ऐसे विचार ही नहीं आते कि मरनेके बाद उन्हें अपने समस्त कर्मोंका फल भोगनेके लिये विवश होकर बार-बार नाना प्रकारकी योनियोंमें जन्म लेना पड़ेगा। ऐसा माननेवाले व्यक्ति पुनः पुनः मृत्यु-के मुखमें पड़ते हैं और यम महाराज उनके कर्मोंके अनुसार उन्हें बार बार नाना प्रकारकी योनियोंमें ढकेलते रहते हैं। वे जन्म-मृत्युके चंगुलसे छुटकारा नहीं पाते।

अब आत्म-तत्त्वकी दुर्लभता बतलाते हुए कह रहे हैं—आत्मतत्त्व कोई साधारण सी बात नहीं है। संसारमें अधिकांश मनुष्योंको आत्मकल्याणकी खबर तक नहीं होती। वे ऐसे वातावरणमें रहते हैं, जहाँ दिन-रात केवल आहार-निद्रा आदि विषय-भोगोंकी ही चर्चा होती रहती है,जिससे उनका मन आठों पहर विषय-चिन्तनमें ही डूबा रहता है। उनको आत्मतत्त्व श्रवणकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। अतएव आत्मतत्त्व श्रवण करनेवाले मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ हैं, कुछ लोग ऐसे होते हैं कि भाग्यवश आत्मतत्त्व-श्रवणका प्रसङ्ग उपस्थित होने पर भी उन्हें विषय-सेवनसे अवकाश नहीं मिलता। अतएव उस श्रवणसे वंचित रहते हैं। और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो आत्म-तत्त्वका श्रवण करते हैं, परन्तु विषयोंमें सर्वदा आसक्त रहनेके कारण उनका मन उस आत्मतत्त्वकी धारणा नहीं कर पाता। कोई-कोई तीक्ष्ण-बुद्धिवाला मनुष्य आत्मतत्त्वको समझ तो लेते हैं, परन्तु यथार्थ रूपमें उसका वर्णन नहीं कर पाते। अतएव आत्मतत्त्व के वक्ता भी दुर्लभ हैं। उनमें भी ऐसे महात्मा कोई विरले ही मिलेंगे, जिन्होंने आत्मतत्त्वका भलीभाँति अनुभव कर लिये हों। अतः इसके ज्ञाता भी दुर्लभ हैं। इस दुर्लभताका कारण यह है कि आत्मतत्त्व पृथ्वीमें देखे जानेवाले समस्त सूक्ष्म तत्त्वोंसे भी अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व है। यह इतना गहन है कि जब तक इसे यथार्थरूपसे समझानेवाले महात्मा नहीं मिलते, तब तक किसी भी मनुष्यका इसमें प्रवेश पाना अत्यन्त ही कठिन है। साधारण ज्ञानवाले मनुष्योंके बतलानेसे इसको समझा नहीं जा सकता है। तर्क-वितर्क द्वारा भी इसको समझ लेना असंभव है। उपयुक्त ज्ञाता और वक्ता द्वारा बतलाये जानेपर ही तर्क-वितर्क से सर्वथा अतीत इस आत्मतत्त्व के विषय में जानकारी प्राप्त हो सकती है। नचिकेता! तुम्हारी जैसी निर्मल मति तर्कसे कदापि नहीं मिल सकती। ऐसी मति तो तभी उत्पन्न हो सकती है, जब कि भगवत्कृपासे किसी महापुरुषका सत्सङ्ग और उपदेश मिलता है। तुम जैसा उपयुक्त धीर और निष्ठा-सम्पन्न जिज्ञासु विरला ही मिलता है।

नचिकेता! कर्म-फलसे इस लोक और परलोकमें जो सब भोग पाये जाते हैं, वे चाहें जितने भी महान क्यों न हों, एक दिन उनका विनाश निश्चित है। अतएव वे अनित्य हैं और यह सिद्ध है कि अनित्य साधनोंसे नित्य वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती। इस रहस्य को भलीभाँति समझ-बूझ कर ही मैंने फलकामना और आसक्ति से सर्वथा रहित होकर केवल कर्त्तव्य बुद्धिसे ही नाचिकेत-अग्निका चयन किया था। इसी से मैं परमात्म तत्त्वका अधिकारी हो सका हूँ। तुम भी सब प्रकारसे बुद्धिमान और निष्काम हो। क्योंकि मैंने सब प्रकारके भोगोंसे परिपूर्ण स्वर्ग आदि तक को भी तुमको वरदानके रूपमें देना चाहा था, परन्तु तुमने उन सबको अनित्य जान कर बड़े धैर्यके साथ उनका परित्याग कर दिया। तुम्हारा मन उन सबमें तनिक भी आसक्त नहीं हुआ; तुम अपने

निश्चय पर अटल रहे। अतएव तुम आत्मतत्त्वके उपयुक्त अधिकारी हो।

यह गूढ़तत्त्व सबके हृदयरूपी गुफामें स्थित है। पुराण-पुरुष परमेश्वरका कोई सहज ही दर्शन नहीं कर सकता। उनका दर्शन बड़ा ही दुर्लभ है। जो उस पुराण-पुरुष परमेश्वरका निरन्तर चिन्तन करते हैं, वे उनका दर्शन कर सदाके लिये सांसारिक हर्ष-शोकसे रहित हो जाते हैं। उनके अन्तःकरणसे हर्ष-शोक आदि विकार समूल नष्ट हो जाते हैं। आत्मा-सम्बन्धी उपदेशोंको पहले अनुभवी महापुरुषोंके निकट श्रद्धापूर्वक सुनना चाहिए। अनन्तर एकान्तमें उस पर मनन करना चाहिए। ऐसा करनेसे आनन्दमय परमब्रह्मका दर्शन प्राप्त हो जाता है। नचिकेता! तुम्हारे लिये उन परमब्रह्मका द्वारा खुला हुआ है। तुम ब्रह्म-प्राप्तिके उत्तम अधिकारी हो।

यम महाराजके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनकर नचिकेता संकुचित होकर बोले—भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो धर्म और अधर्मके सम्बन्धसे रहित, कार्य और कारणरूपा प्रकृतिसे पृथक् तथा भूत, वर्तमान और भविष्यत्—इन सबसे स्वतंत्र परमेश्वरका आप जिस रूपमें दर्शन कर रहे हैं, मुझे उपदेश दीजिये।

यम महाराज उपदेश आरम्भ करते हैं—समस्त वेद नानाप्रकारके और नाना छन्दोंसे जिनका प्रतिपादन करते हैं, तप आदि समस्त साधनोंके जो एकमात्र चरम लक्ष्य हैं, जिनको प्राप्त करनेके लिये साधक निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उन पुरुषोत्तम भगवान्‌का संक्षेपमें परिचय है—'ॐ' यह एक अक्षर। यह अविनाशी अक्षर प्रणव ही पर-ब्रह्मका स्वरूप है और यही परमपद है। इस अक्षरको जान लेने पर साधक अपनी इच्छानुसार सब कुछ प्राप्त कर लेता है। परम ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये ॐकार ही सबसे श्रेष्ठ अवलम्बन अर्थात् आश्रय है। इस आश्रयको जान लेने पर साधक निस्सन्देह ब्रह्म प्राप्तिका परम गौरव प्राप्त कर लेता है।

आत्मवस्तु (जीवात्मा और परमात्मा) नित्य अविनाशी है। यह अनित्य विनाशी जड़ शरीरसे सर्वथा पृथक् है। यह अनादि और अनन्त है, न तो इसका कोई कारण है और न कार्य ही। अतः यह जन्म-मरणसे रहित सदा एकरस और सर्वथा निर्विकार है। शरीरका नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता। जो लोग इसको मरनेवाला या मारनेवाला मानते हैं, वे सर्वथा भ्रान्त हैं। जीवात्मा और परमात्मा सदा-सर्वदा एक साथ निवास करने पर भी जीवात्मा परमात्माका दर्शन नहीं कर पाता, बल्कि वह मोहित होकर विषय-भोगोंमें फँस कर पशु-पक्षी, कीट, पतंग आदि नाना योनियोंमें भटकता रहता है। जो साधक भगवत्कृपासे अपने नित्य-स्वरूपका परिचय प्राप्त कर लेते हैं, वे निष्काम और शोकरहित हो जाते हैं। परब्रह्म महान्‌से भी महान् और अणुसे भी अणु है अर्थात् सारी महान् वस्तुएँ उनके अधीन हैं एवं सारी वस्तुओंमें अणु-अणु रूपमें प्रविष्ट रहने के कारण अणुसे भी अणु है। वे अचिन्त्य-शक्ति परमेश्वर परस्पर विरुद्ध-धर्मोंके आश्रय हैं। एक ही समयमें उनमें परस्पर विरुद्ध धर्मोंकी स्थिति है। वे अपने नित्य परमधाममें विराजमान होते हुए भी दूर से दूर चले जाते हैं। वे अनन्तशय्याके ऊपर शयन करते हुए भी सर्वत्र चलते रहते हैं। इस प्रकार अलौकिक महिमाशाली होने पर भी उन्हें अपने ऐश्वर्यका तनिक भी अभिमान नहीं है। प्राणियोंके अनित्य और विनाशशील शरीरमें वे परमात्मा प्राकृत शरीरसे रहित अपने नित्य चिन्मय स्वरूपमें अचल भावसे स्थित है। बुद्धिमान व्यक्ति उन महान् विभु पुरुषको जान लेनेके बाद शोकरहित हो जाता है। वे परमेश्वर न तो विचित्र विचारशील शास्त्रज्ञ वक्ताकी वक्तृता द्वारा जाने जा सकते है; न बुद्धिके अभिमान में प्रमत्त हुए तर्कके द्वारा विवेचन करके उन्हें पाया जा सकता है और न परमात्माके विषयमें बहुत कुछ श्रवणके द्वारा ही उनको प्राप्त हुआ जा सकता है; वे तो उसीको प्राप्त होते हैं जिसे वे स्वयं उपयुक्त पात्र समझ कर कृपापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं। तात्पर्य यह कि शास्त्र और गुरुदेवके वचनोंके प्रति दृढ़ श्रद्धा

रखनेवाला व्यक्ति भगवत्कृपाके लिये उत्कट इच्छुक होने पर कृपामय प्रभु अपना स्वरूप प्रकाश कर उस भक्तके ऊपर कृपा करते हैं । परन्तु जो लोग बुरे आचरणोंका त्याग नहीं करते, जिनका मन सब समय सांसारिक भोगोंके पीछे-पीछे दौड़ते रहनेके कारण सर्वदा अशान्त रहता है एवं जिनकी चित्त-वृत्ति परमात्मामें स्थिर नहीं होती, वे सूक्ष्म बुद्धि द्वारा—जड़-पाण्डित्य द्वारा परमेश्वर तत्त्वके विषयमें जितना भी तर्क-वितर्क क्यों न करें, परमात्माको प्राप्त नहीं हो सकते । क्योंकि परमात्मा ऐसे लोगोंसे बहुत ही दूर रहते हैं ।

मनुष्य शरीरमें धर्मशील ब्राह्मण और धर्म-रक्षक क्षत्रियको श्रेष्ठ माना गया है, किन्तु वे भी जब काल-स्वरूप परमेश्वरके भोजन बन जाते हैं, तब साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है । अर्थात् सभी कालके अधीन होकर जन्म और मृत्युको प्राप्त होते हैं । इनकी तो बात ही अलग रहे, जो सबको मारने वाले मृत्युदेव हैं, वे भी उन परमेश्वरके व्यञ्जन-स्वरूप—चटनी-तरकारी आदिकी भाँति हैं । अतएव ऐसे परमेश्वरको कौन जान सकता है ? मन-बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा सांसारिक पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त होने पर भी इन्द्रियातीत परमेश्वरको अपनी शक्तिसे कोई भी यथार्थ रूपमें नहीं जान सकता । अतएव जिसको परमात्मा स्वयं कृपा कर अपना स्वरूप दिखलाना चाहते हैं, वही उनका स्वरूप दर्शन करता है ।

(क्रमशः)

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें

त्रिदण्ड संन्यास

हम बड़े उत्साह और आनन्दोल्लासके साथ यह शुभ-संवाद दे रहे हैं कि विख्यात अंग्रेजी पत्रिका "बैक-टू-गौड हेड" के संपादक तथा प्रसिद्ध 'श्रीभागवत-पत्रिका (हिन्दी) तथा श्रीगौड़ीय पत्रिका (बंगला) के सहकारी संपादक-संघके संघपति—श्रीपाद अभयचरण-'भक्तिवेदान्त' जी तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के प्रधान-प्रधान पृष्ठपोषकों एवं अर्थ आदि सर्व प्रकारसे समितिकी सेवा करनेवालोंमें से एक प्रधान पृष्ठपोषक और सेवक—वयोवृद्ध (८७ वर्ष) श्रीपाद सनातन दासाधिकारीने गत ३१ भाद्र १३ सितम्बर, बृहस्पतिवार, श्रीविश्वरूप महोत्सव के शुभ दिन समितिके प्रतिष्ठाता और सभापति परिव्राजकाचार्यवर्य त्रिदण्डि स्वामी ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके निकट श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा में त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किये हैं । श्रीश्री गुरु-गौराङ्ग राधाविनोदविहारीके सन्मुख श्रील प्रभुपादजीके आलेख्य एवं बहुतसे संन्यासियोंके साक्षात श्रीश्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीकृत सात्वत शास्त्र 'सत्क्रियासार-दीपिका' के अनुसार सारी क्रियाएँ सम्पन्न हुई हैं ।

विस्तृत-विवरण अगली संख्यामें प्रकाशित किया जा रहा है । इसके लिये पाठक हमें क्षमा करेंगे ।

—प्रकाशक

विविध-सम्वाद

श्रीश्रीराधाकृष्णका झूलन-महोत्सव--

(क) श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें—

२८ श्रावण, शुक्रवार, एकादशीसे लेकर १ भाद्र, मंगलवार, पूर्णिमा तक ५ दिन श्रीश्रीराधाविनोद-विहारीजीका झूलन-महोत्सव पिछले वर्षोंसे भी अधिक धूमधामके साथ मनाया गया है। सभामण्डप, रत्नमय हिंडोला और श्रीमंदिर नानाप्रकारकी आलोक-मालाओं, विविध-प्रकारके बहुमूल्य रंग-बिरंगे वस्त्रों और सुन्दर-सुन्दर आभूषणोंसे सुसज्जित हो रहे थे। जो दर्शकोंके मन और प्राणोंको सहज ही आकर्षित कर रहे थे।

नाट्यमंदिर प्रतिदिन कृष्ण-लीलाकी नयी-नयी भव्य झाँकियाँ दर्शकोंके मानस-पटल पर कृष्ण-लीलाकी मधुर-मधुर स्मृतियाँ अङ्कित करती थीं। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके झूलन महोत्सवकी यह एक खास विशेषता थी, जो मथुरा भरमें अद्वितीय थी। इसके अतिरिक्त समितिके झूलन महोत्सवका उद्देश्य लोकरंजन अथवा इन्द्रिय-सुखकी प्राप्ति नहीं, बल्कि कृष्ण-सुख का अन्वेषण है। इसलिये यहाँ सब समय हरिकीर्तन और हरिकथा प्रसंगका कार्यक्रम ठीक-ठीक रूपमें अनुष्ठित हुआ है। क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि हरिकीर्त्तनके बिना भक्तिका कोई अनुष्ठान भी चरम श्रेय प्रदान करनेमें समर्थ नहीं होता—यद्यप्य-ऽन्या भक्तिः कलौ कर्त्तव्या तदा कीर्तनाख्या भक्ति संयोगेन एव कर्त्तव्या।'

प्रतिदिन शामके ६ बजेसे रातके ११ बजे तक दर्शकों और श्रोताओंकी भीड़ लगी रहती थी। विद्वान् और अनुभवी सन्तोंके प्रवचन भाषण और संकीर्त्तनका कार्यक्रम नियमित रूपमें सम्पन्न हुआ है।

(ख) श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें-

इस वर्ष समितिके श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें भी उपरोक्त पाँच दिनों तक श्रीश्रीराधा-विनोदविहारीजीका झूलन-महोत्सव विराट धूमधाम से सम्पन्न हुआ है। आसाम प्रदेशके लिये ऐसा विराट झूलन-महोत्सव सर्वथा अभिनव व्यापार था। इन दिनों यहाँ पर बड़े दूर-दूरके यात्री झूलन उत्सवका दर्शन करनेके लिये बड़ी संख्यामें उपस्थित होते थे। मंदिरके चारोंओर प्रतिदिन शामके ४ बजेसे रातके ११ बजे तक दर्शनार्थियोंका विराट मेला लग-जाता था। प्रतिदिन लगभग ३ हजारसे लेकर ५ हजार तक लोग श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीका झूलन-उत्सव दर्शन करते थे। श्रीश्रीराधा-विनोदविहारीजी अपने दिव्य दर्शनोंसे सबके नयन-मनको आकर्षण करते थे। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि आसाम प्रदेशभरमें ऐसी भव्य और चिताकर्षक श्रीमूर्त्ति और कहीं भी नहीं है। प्रतिदिन संकीर्त्तन, भाषण और प्रवचनका कार्यक्रम नियमित रूपसे सम्पन्न हुआ है। इस विषयमें श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठके रक्षक—श्रीपाद सुदाम सखा ब्रह्मचारीकी कार्यकुशलता और हरि सेवन्मुखी-प्रवृति सराहनीय और आदर्श स्थानीय है।

अन्यान्य शाखा-मठ-समूहमें—

उपरोक्त मठोंके अतिरिक्त समितिके समस्त मठों और आश्रमोंमें विशेषतः श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चिनसुरामें भी झूलन-महोत्सव उपरोक्त प्रकारसे बड़ी धूमधामसे सुसम्पन्न हुआ है।

श्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव तिथि—

गत १ भाद्र, मङ्गलवार, झूलन-पूर्णिमाके दिन श्रीश्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव-तिथि समितिके

समस्त मठोंमें संकीर्त्तन और भाषण-प्रवचनके माध्यम से पालित हुई है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा में शाम तक निर्जला उपवासके पश्चात् अनुकल्प ग्रहण किया गया। संध्यारतिके पश्चात् त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने श्रीश्री बलदेव प्रभुके आविर्भावके सम्बन्धमें एक संक्षिप्त भाषण दिया; जिसमें उन्होंने जीव-हृदयमें श्रीबलदेवका चिद्बल सञ्चारित नहीं होनेसे श्रीकृष्णपाद-पद्मके आविर्भावकी उपलब्धिकी कदापि संभावना नहीं है; श्रीगुरुदेव साक्षात् श्रीबलदेवाभिन्न प्रकाशविग्रह हैं; उनकी कृपा ही कृष्ण-कृपा प्राप्तिका एकमात्र उपाय है—आदि विषयों पर बड़ा ही तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया। दूसरे दिन सवेरे ६-३० के पूर्व श्रीबलदेव व्रतका पारण किया गया है।

ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्री आचार्यदेवका मथुरामें शुभागमन—

गत ३ भाद्रपद (२० अगस्त) को श्रीश्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता और नियामक परिव्राजकाचार्य ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञानकेशव गोस्वामी महाराज श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें कतिपय ब्रह्मचारियोंके साथ पधारे हैं। मथुरा जंक्सन स्टेशन पर 'बैक-टू-गौडहेड' पत्रिकाके सम्पादक—श्रीपादअभयचरण भक्तिवेदान्त महोदय, त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीहरिदास ब्रह्मचारी, श्रीगोविन्ददास ब्रह्मचारी, श्रीसत्यपाल ब्रह्मचारी आदिने पुष्पमाला और चन्दन आदि द्वारा श्रीश्रीआचार्यदेवकी अभ्यर्थना की और वहाँसे श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें आये।

श्रीश्री जन्माष्टमी और नन्दोत्सव—

गत २४ भाद्र बृहस्पतिवारके दिन श्रीगौड़ीय-वेदान्त समितिके समस्त मठोंमें श्रीश्रीजन्माष्टमी और दूसरे दिन नन्दोत्सव खूब समारोहके साथ मनाया गया है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका प्रांगण और मन्दिर रंग-बिरंगे बन्दनवारों पताकाओं, नानाप्रकार के बहुमूल्य वस्त्रों और पुष्पमालाओंसे सजाया गया था। नाट्य-मन्दिर रंग-बिरंगी आलोक मालाओंसे जगमग कर रहा था, जिसमें विचित्र कलाओंसे पूर्ण अतीव मनोरम कृष्ण-लीलाकी बहुविध झाँकियाँ प्रस्तुत की गयी थीं। ये झाँकियाँ दर्शकोंके चित्तको बरबस आकर्षित कर कृष्णलीलाके मधुर भावोंसे ओत-प्रोत कर देती थीं। 'श्रीकृष्णका आविर्भाव, वसुदेव-देवकी द्वारा चतुर्भुज कृष्णकी प्रार्थना, श्रीकृष्णको लेकर वसुदेव महाराजका नन्दभवन जाना, दुष्ट कंस द्वारा योगमायाका पत्थरपर पटका जाना, बीच ही में छूटकर देवीका आकाशमें चला जाना और वहाँ अष्टभुजा मूर्त्ति प्रकाश करना', पूतना बध, आदि झाकियाँ लोगोंको बड़ी ही प्रभावित कर रही थीं।

प्रातःकाल मङ्गल-आरती और कीर्त्तनके बादसे आरम्भ कर आधी रात तक ध्वनि विस्तारक यंत्र (माइक्रोफोन) की सहायतासे श्रीमद्भागवत १० म स्कन्धका पारायण और बीच-बीचमें संकीर्त्तन चलता रहा। संध्यारतिके पश्चात १०८ श्रीश्री आचार्यदेवने एक बड़ा ही दार्शनिक, किन्तु साथ ही सरस भाषण दिये, जिसमें उन्होंने इस विषय पर प्रकाश डाला कि 'श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ आराध्यतत्त्व क्यों हैं ?' अन्तमें श्रीपाद अभयचरण भक्तिवेदान्त प्रभुजीने श्रीमद्भागवतसे श्रीकृष्णका जन्म-प्रसंङ्ग पाठ किये। सभामण्डप खचाखच भरा हुआ था। आधीरातके समय तुमुल संकीर्त्तन और जयध्वनिके बीच श्रीकृष्णका अर्चन-पूजन और भोग-राग विधिवत सम्पन्न हुआ। नार्थ इस्टर्न रेलवे के कटिहार डिविजनके डी. एम. ओ.—श्रीयुत गौरीशंकर चटर्जी महोदय, स्थानीय जिला अस्पतालसे मेडिकल ऑफिसर-श्रीयुत वाई. एन. अरोरा, सहायक मेडिकल ऑफीसर श्रीयुत श्रीवास्तवजी, नगर पालिकाके उपाध्यक्ष श्रीनत्थीसिंह पाल आदि बहुतसे शिक्षित संभ्रान्त व्यक्ति इस महोत्सवमें उपस्थित हुए थे।

दूसरे दिन नन्दोत्सवके दिन निमंत्रित और

अनिमंत्रित सैकड़ों व्यक्तियोंको श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजीका महाप्रसाद वितरण किया गया। उत्सव का अधिकांश खर्च श्रीमती गार्गीदेवी, चिनसुरा (बंगाल) ने दिया। इन्होंने इस अवसर पर श्रीश्री राधाविनोदबिहारीजीको कुछ कीमती वस्त्रादि भी भेंट किये हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी उल्लेख योग्य है कि इसी अवसर पर श्रीलक्ष्मणदास ओम् प्रकाश, डंकौरवालोंने जो श्रीभागवत-पत्रिकाके एक श्रद्धालु और नियमित पाठक हैं—श्रीविग्रहों के लिये चाँदीके मुकुट भेंट किये। समिति इनकी विविध-सेवाओं के लिये धन्यवाद ज्ञापन करती है।

श्रीश्रीराधाष्टमी—

गत २४ भाद्र बृहस्पतिवारको समस्त शक्तियों की मूल अंशिनी महाभाव स्वरूपा श्रीमती राधिकाजी की आविर्भाव-तिथिका पालन श्रीश्रीआचार्यदेवकी अध्यक्षतामें यहाँ पर खूब समारोहके साथ किया गया है। उषा-कीर्तनके पश्चात् श्रीमती राधारानीके महिमासूचक कीर्त्तन हुए अन्तमें श्रीभागवत पत्रिका के संपादक तथा श्रीपाद सनातन दासाधिकारीने श्रीचैतन्यचरितामृतसे श्रीमती राधिकाजीका प्रसंग पाठ किये। दोपहरमें भोगरागके उपरान्त उपस्थित सज्जनोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीश्री सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव महोत्सव

गत ६ भाद्रपद मंगलवारको जगद्गुरु श्रील सच्चिदानन्द भक्ति विनोद ठाकुरकी आविर्भाव तिथि समितिके समस्त शाखामठोंमें पालनकी गयी है। श्रील आचार्यदेवकी अध्यक्षतामें एक सभा हुई जिसमें श्रीपाद अभयचरण भक्तिवेदान्तजी त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज आदि वक्ताओंने श्रील ठाकुर महाशय की जीवनी और शिक्षाओं पर प्रकाश डाला। अंतमें श्रीश्रीआचार्य देवने श्रीलठाकुर महाशयजीके सम्बन्धमें एक विस्तृत भाषण दिया।

श्रीकेदार-बद्री-परिक्रमासंघका प्रत्यावर्त्तन—

समितिका श्रीश्रीकेदार-बद्री-परिक्रमा-संघ त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज और श्रीपाद रसराज ब्रजवासीकी अध्यक्षतामें श्रीश्रीबद्री नारायण, श्रीश्रीकेदारनाथ और हिमालयके दूसरे-दूसरे तीर्थ स्थानोंकी परिक्रमा और दर्शन कर गत २६ भाद्रपद, मंगलवारको लौट आया है। श्रीश्री बद्रीनारायणकी कृपासे यात्रा पूर्ण निरापद हुई है। सभी यात्री स्वस्थ्य और सकुशल लौटे हैं।

—प्रकाशक

जैव-धर्म

पचीसवाँ अध्याय

(गतांकसे आगे)

प्रमेयके अन्तर्गत नामापराधका विचार

दूसरे दिन संध्याके कुछ देर बाद ही विजय और ब्रजनाथ वृद्ध बाबाजी महोदयके पास पहुँचे और उनको साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम कर बैठे। अवसर पाते ही विजयने नम्रतासे कहा—'प्रभो! आप कृपाकर हमें नामाभास-तत्वके सम्बन्धमें सम्पूर्ण रूपसे बतलाने की कृपा करें, हम नाम-तत्त्वका रहस्य जाननेके लिये बड़े व्याकुल हैं।'

बाबाजी बोले—'तुम लोग धन्य हो। श्रीनाम-

तत्त्वको समझनेके लिये नाम, नामाभास और नामापराध—इन तीन विषयोंको भलीभाँति समझ लेना आवश्यक होता है। नाम और नामापराधके सम्बन्ध में मैंने बहुतसी बातें बतलायी है, इस समय नामाभासके विषयमें बतला रहा हूँ। नामके आभासको नामाभास कहते हैं।'

विजय—'नामाभास किसे कहते हैं और वह कितने प्रकारका होता है?'

बाबाजी—'आभास'—शब्दसे 'कान्ति', 'छाया', और प्रतिबिम्बका बोध होता है। किसी प्रकाशवान पदार्थकी जो कान्ति निकलती है, उसको 'कान्ति' या 'छाया' कह सकते हैं। अतएव नामरूप सूर्यका दो प्रकार आभास होता है—एक नामछाया और दूसरा 'नाम-प्रतिबिम्ब'। तत्त्वविद् पुरुष भक्त्याभास,भावाभास, नामाभास, वैष्णवाभास आदि शब्दोंका व्यवहार सब समय किया करते हैं। सभी प्रकारके आभास दो प्रकारके होते हैं—'प्रतिबिम्ब' और 'छाया।'

विजय—'भक्त्याभास, भावाभास, नामाभास और वैष्णवाभास—इनमें परस्पर क्या सम्बन्ध है?'

बाबाजी—'वैष्णव लोग हरिनामका अनुशीलन करते हैं; जब वे भक्त्याभासके साथ नामका अनुशीलन करते हैं, तब उनका अनुशीलन किया हुआ नाम—'नामाभास' कहलाता है। वे स्वयं भी वैष्णव-आभास होते हैं—शुद्ध वैष्णव नहीं। भाव और भक्ति—एक ही चीज है, केवल अवस्था भेदसे भिन्न-भिन्न नामोंसे परिचित होती है।'

विजय—'किस अवस्थामें जीव 'वैष्णवाभास' कहे जाते हैं?'

बाबाजी—'श्रीमद्भागवत (११।२।४७)] में कहते हैं—

अर्च्चायामेव हरये यः पूजां श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥ (क)

इस श्लोकमें जिस 'श्रद्धा'—शब्दका उल्लेख है, वह शुद्ध श्रद्धा नहीं, बल्कि श्रद्धाभास है, क्योंकि भगवद्भक्तोंकी पूजाको छोड़कर कृष्ण-पूजामें जो श्रद्धा होती है, वह शुद्ध श्रद्धाकी या तो छाया होती है अथवा प्रतिबिम्ब। वैसी श्रद्धा लौकिक श्रद्धाभास होती है, अप्राकृत श्रद्धा नहीं। अतएव जिनमें वैसी श्रद्धा देखी जाय, वे प्राकृत भक्त या वैष्णवाभास समझना चाहिए। श्रीमन्महाप्रभुजीने श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके पिता और चाचा हिरण्य-गोवर्द्धन को 'वैष्णवप्राय' कहा है। 'वैष्णव-प्राय'—शब्दका अर्थ यह है कि शुद्ध भक्तकी तरह वे माला-मुद्रा आदि वैष्णव वेश धारण कर 'नामाभास' करते हैं, परन्तु वास्तवमें वे शुद्ध-वैष्णव नहीं हैं।'

विजय—'मायावादी यदि वैष्णव चिह्न धारण कर नाम उच्चारण करें, तो क्या उनको वैष्णवाभास कहा जा सकता है?'

बाबाजी—'नहीं, उनको वैष्णवाभास भी नहीं कहा जा सकता है; वे अपराधी हैं; अतएव उनको 'वैष्णवापराधी' कहा जायगा। प्रतिबिम्ब-नामाभास और प्रतिबिम्ब-भावाभासका आश्रय करनेके कारण उनको वैष्णवाभास कहना तो चाहिए था, परन्तु अत्यन्त अधिक अपराधी होनेके कारण वे स्वयं 'वैष्णव' नामसे पृथक हो पड़ते हैं।'

(क्रमशः)

(क) जो श्रद्धापूर्वक भगवानकी अर्चा-मूर्त्तिको हरि मानकर पूजा करते हैं, परन्तु कृष्णके अन्यजीव और भक्तोंकी श्रद्धापूर्वक पूजा नहीं करते वे, प्राकृत (कनिष्ठ) भक्त हैं।